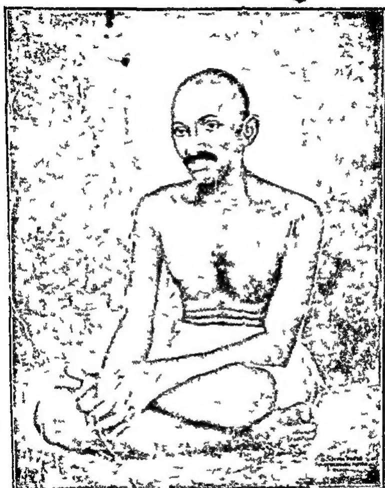
गान्धी-गीता



महात्मा गान्धी।

लेखक—प० नरोत्तम व्यास।

गान्धी ग्रन्थावली, नं० २

गान्धी-गीता

"गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैः शास्त्र सग्रहै ।"



लेखक

पण्डित नरोत्तम व्यास ।



प्रकाशक

रामलाल वर्म्मा, प्रोप्राइटर—

"वर्म्मन प्रेस" और "आर० एल० वर्म्मन एण्ड को०,"

३७१, अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।



ज्येष्ठ, सं० १९७९ विक्रमीय



प्रथम संस्करण—२००० प्रति] [मूल्य २) रंगीन जिल्द २।) रु०

सुनहरी, रेशमी जिल्द ३।।) रुपया।


मुद्रक
राम लाल वर्मा
वर्मन प्रेस,
कलकत्ता

गान्धी-गीता



आद्यगीताकार भगवान् श्रीकृष्ण ।

Burman Press Calcutta

समर्पण

आद्य गीताकार,

पूर्णावतार

भगवान् श्रीकृष्ण,

के

युगुल चरण-कमलोंमें

नवयुगावतार गान्धीकी यह

'गान्धी-गीता'

लेखककी ओरसे भक्ति सहित

समर्पित है।

भूमिका

हिन्दीमें महात्मा गान्धीके कितनेही जीवन चरित्रोंके रहते हुए भी, हमारे लिये 'गान्धी गौरव'का जनतामें आशातीत आदर होगा, इसका हमें स्वप्नमें भी विश्वास नहीं था। श्रीशारदा सरस्वती, धर्माभ्युदयादि मासिकपत्र कर्मवीर, प्रजावासी, भारतमित्र, वर्त्तमान और कलकत्ता-समाचार आदि दैनिक तथा साप्ताहिक पत्रोंने उसे अद्वितीय और अपूर्व बताया और हमें इसके लिये उत्साह दिलाया कि, हम महात्मा गान्धीके महत्व-पूर्ण उपदेशोंका भी इसी रूपमें—नयी और रोचक शैलीमें—कोई अच्छा संस्करण तैयार करें। उनके उक्त प्रोत्साहन और हिन्दीके सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ-प्रकाशक, मित्रवर बाबू रामलालजी वर्मा महोदयके विशेष आग्रहसे हमने महात्मा गान्धीके समयोपयोगी अथच महत्वपूर्ण उपदेशोंके आधारपर इस पुस्तकको लिखना आरम्भ कर दिया।

महात्मा गान्धीके उपदेश, भगवान् श्रीकृष्णके उपदेशोंकीही भाँति जीवनकी जटिल समस्याओंको सुलझानेवाले, पथ भ्रष्टोंको उनके सच्चे मार्गका निर्देश करनेवाले तथा जीवनको उन्नत बनानेवाले हैं, यही सोचकर हमने उनके इस उपदेश संग्रहका नाम 'गान्धी-गीता' रखा है।

'गान्धीगीता'के शैली निर्वाचनके लिये हमें आरम्भमें थोड़ीसी कठिनता का सामना करना पड़ा था, उसे दूर करनेके लिये मराठी भाषाके सुप्रसिद्ध लेखक, श्री वासुदेव गोविन्द आपटे बी० ए० के "विसाव्या शतकान्तला

श्रीकृष्णार्जुन संवाद" नामक मराठी पुस्तकसे यथेष्ट सहायता मिल गयी। पुस्तकका प्रस्तावना और उपसंहार भाग हमने उसीके आधारपर लिखा है। मूल पुस्तकका विषय संग्रह हमने महात्मा गान्धी लिखित Home Rule for India और मथुरादास त्रीकमदासजी लिखित 'महात्मा गान्धीनो विचार सृष्टि' नामक गुजराती पुस्तकसे किया है। अतएव हम इन पुस्तकोंके प्रकाशकोंके भी आभारी हैं।

यदि पाठको और विद्वान् समालोचकोंने 'गान्धी गौरव की भाँति 'गान्धी गीता'का भी आदर किया, तो हम महात्मा गान्धीके सम्बन्धमें कोई अन्य भेंटभी उपस्थित करनेका प्रयत्न करेंगे।

कलकत्ता प्रवास।
संवत् १९७९

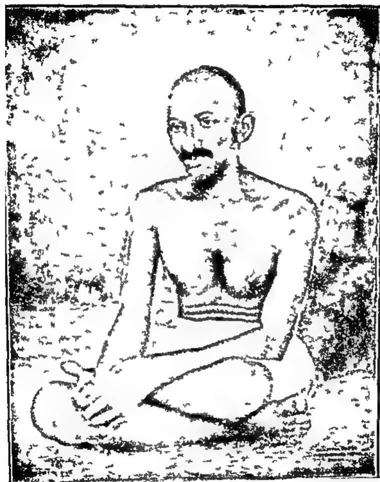
नरोत्तम व्यास।



विषय— पृष्ठ

[स्वर्णोपदेश]

गान्धी-गीता



महात्मा गान्धी।

Burman Press Calcutta

स्वर्णोपदेश

[महात्माजीके कुछ चुने हुए उपदेश]

हम स्वाधीन हैं।

यदि भारतवासी ईश्वर और आत्माको मानते हैं, तो वे इस बातपर सहजही विश्वास कर लेंगे, कि वर्त्तमान शासक गण केवल हमारे शरीरके ही मालिक हैं। वे यदि चाहें, तो उसे कैद करे, देश-निकाला दे अथवा फाँसीपर लटकायें, किन्तु हमारा मन, हमारी आकाक्षाएँ, हमारा अन्त करण और हमारी आत्माएँ, आकाशमें उडनेवाले पक्षीकी तरह, सदा-सर्वदा स्वाधीन और स्वतन्त्र हैं। उनका नाश तीखेसे तीखे बाण, तेजसे तेज तलवारे और भारीसे भारी तोपें भी नहीं कर सकती। यह सत्य ही नहीं, ध्रुव सत्य है।

* * * *

नि सहायका महत्त्व।

जिस साधु व्यक्तिको किसी कारणवश सारे संसारने त्याग दिया है, जिसके खाने पीने, रहने सहने और दु ख दर्दोंका पता संसारका कोई व्यक्ति नहीं रखता और जिसकी सहायता सिवा

ईश्वरके और कोई नहीं करता, समझलो, कि उसके जैसा बलवा
और उसके जैसा दुर्जेय व्यक्ति संसारमें दूसरा कोई नहीं है।

* * * *

आत्मिक बलकी श्रेष्ठता।

यदि संसारको आत्माके बलपर विश्वास है, तो उसे इ
बातको कभी न भूलना चाहिये, कि संसारकी बड़ी से बड़
शक्तिसे भी साधारण आत्माका बल श्रेष्ठ होता है, क्योंकि
आत्मामें प्रेमका निवास है और यह प्रेम क्षणभरमें बड़ी आसानी
से महान्से महान् पर्वतको भी हिला दे सकता है। भारतव
इस बातका सदासे विश्वास रहा है, कि आत्माकी शक्ति
आगे शरीरकी शक्ति तृणवत् है और वज्रके समान कठोर हृद
भी आत्म-बलकी अग्निमें पिघलकर पानी हो जाता है।

* * * *

आत्मा और चरित्र।

आत्माके प्रत्येक गुण और हरएक शक्तिको जान लेना
हमारा सबसे पहला और आवश्यक कर्त्तव्य है। आत्माक
ज्ञान चरित्रके द्वारा होता है। चरित्रवान् व्यक्ति सदा सत्य
अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह और निर्भयता आदि व्रतों
का पालन किया करते हैं। वे प्राणोंसे भी सत्यको अधिक
प्यार करते हैं। चरित्रवान् स्वयं मर जाते हैं, पर दूसरोंक
कभी बाल भी बाँका नहीं करते। वे सैकड़ों असह्य कष्ट सहक

अहिंसाका महत्त्व।

जो व्यक्ति अहिंसा धर्मका पूर्ण रूपसे पालन करता है, उसके चरणोंपर एक न-एक दिन सारा संसार सिर झुका देता है। कारण, अहिंसाका माहात्म्य ही कुछ ऐसा है। अहिंसाका सच्चा अर्थ यही है, कि तुम किसी प्राणीका दिल न दुखाओ। जो आदमी तुम्हें शत्रु समझे, उसे भी तुम अपना परम मित्र समझो। जो इस अर्थके अनुसार अहिंसाकी साधना करता है, उससे कोई स्वप्नमें भी शत्रुता करना नहीं चाहता। अहिंसा-धर्म दूसरोंको जीवन-दान करनेकी प्रेरणा करता है। जीवन-दान सब दानोंसे श्रेष्ठ है। जो मनुष्य वास्तवमें दूसरोंको जीवन दान करता है, वह मानों शत्रुताको संसारसे निर्मूल कर देता है। वह उत्तम कोटिके भावों और उच्च श्रेणीके विचारोंका मार्ग तैयार करता है। सारांश यह, कि सब प्रकारके आचारोंमें अहिंसाका आचरणही श्रेष्ठ है, क्योंकि अहिंसा सत्यकी जननी—माता है।



सत्यकी प्रधानता।

संसारमें जितने भी धर्म हैं, उनमें सत्य धर्म सर्वोपरि है। जहाँ सत्यका निवास है, वहीं विजयका भी। सदासे भारतवर्षमें जितना मान सत्यका होता आया है, उतना और किसी धर्मका नहीं। वेद और पुराण, स्मृति और शास्त्र, सबने बड़े अनुभवके बाद सदा इसी सूत्रका उच्चकण्ठसे नाद किया है, कि "सत्यमेव जयते नानृतम्।" इसका क्या कारण है? कारण

यही है, कि सत्यकी, कभी, किसी कालमें, हत्या नहीं होती। वह सदा अजर और अमर रहता है।

* * * - *

धर्मका महत्त्व।

मेरा विश्वास है, कि विना धर्मका जीवन, विना सिद्धान्तका जीवन है और विना सिद्धान्तका जीवन उसी प्रकार लक्ष्य-भ्रष्ट हो जाता है, जिस प्रकार नदीमें पडी हुई नाविक-शून्य नौका जिस तरह विना नाविककी नाव धारमें पडकर केवल इधर उधर भटकती फिरती है, उसी प्रकार धर्म हीन मनुष्य भी ससार सागरमें इधर-उधर मारा फिरता है और कभी जीवनके लक्ष्यतक नहीं पहुँचने पाता। अत, धर्म-प्राण भारतवासियों को कभी और किसी प्रकार, धर्मका परित्याग नहीं करना चाहिये। आप ठीक जान ले, कि जो लोग देश हितैषी तो बनते हैं, पर धर्मके नामसे नाक भौं सिकोडते हैं, उनका किया कुछ भी न हो सकेगा। देश-हितके भावमें तभी चमक आयेगी, जब उसमें धार्मिकताका पुट पडा होगा। लेकिन याद रहे, आपने जिस धर्मका आश्रय ले रखा है, उसके आगे अन्य धर्मो को तुच्छ न समझे। कारण, ससारके सारे धर्म एकही स्थान पर पहुँचानेवाले भिन्न भिन्न मार्ग है।

* * * *

सत्याग्रह।

सत्य-पूर्ण आग्रहको 'सत्याग्रह' कहते हैं। सत्याग्रह विशुद्ध आत्मिक बलका स्वरुप है। आत्मा शुद्धि मय, बुद्धि मय और

ज्ञान मय है। इसीलिये उसकी सत्य-शक्तिको "सत्याग्रह" कहते हैं। सत्याग्रहकी जड आत्मा है और यह सभीको मालूम है, कि आत्मा प्रेमसे भरी हुई है। तदुसार यदि हमें कोई अज्ञानसे कष्ट देता है, तो यह निश्चय है, कि उसे हम सत्याग्रह अर्थात् प्रेम-बल द्वारा जीत लेगे, क्योंकि एकमात्र प्रेमसेही ससारका परिचालन होता है।

सत्याग्रही लोग, विकटसे विकट विपत्तिमें भी अपने शरीर की परवा नहीं करते। वे जिस बातको बडी विवेचनाके बाद सत्य मान लेते हैं, उसे प्राण जानेतक नहीं छोडते। अत 'पराजय' शब्द उनके शब्द कोषमें ढूंढे भी नहीं मिलता।

सत्याग्रही अपने शत्रुका नाश नहीं चाहते, उसपर क्रोध नही करते, वरन् उसपर सदैव दया-भाव बनाये रखते हैं। जिसने सत्याग्रहके लिये, अपना सर्वस्व त्याग दिया, उसने मानों ससारकी बहुमूल्य सम्पत्तियाँ प्राप्त कर लीं। कारण, सत्याग्रहके समय सत्याग्रहीके पास, सब धनोंसे बढकर सन्तोष धनका निवास होता है। फिर आप ही बताइये, ससारमें रहकर सच्चा सुख किसने प्राप्त किया है? ससारके सभी सुख मृग तृष्णाके समान हैं। आप ज्यों ज्यों उनके पास पहुँचनेका प्रयत्न कीजियेगा, त्यों त्यों वे दूर हो हटते जायेंगे। सत्याग्रही वही हो सकता है, जिसकी धर्ममें सच्ची निष्ठा है। "हाथ सुमिरनी, पेट कतरनी" का नाम निष्ठा नहीं है। "धर्म धर्म" चिल्लाकर अधर्म के कार्य्य करना, कदापि धर्म नहीं कहा जा सकता।

* * * *

दयाका महत्त्व।

दयाका बलही आत्म बलका परिचायक है। जिसमें दया है, उसकी आत्माको अतीव उन्नत समझना चाहिये। इस दया बलने ही भारतको आजतक अक्षुण्ण अवस्थामें रखा है। राजा शिवि, दधीचि और अन्यान्य पुराण-प्रसिद्ध देवात्माओंके नाम आजतक संसारमें अमर हैं। इसका एकमात्र कारण, दया है। इस बलकी सिद्धिके प्रमाण इतिहासमें पग-पगपर प्राप्त होते हैं। यदि संसारमें, विशेषकर भारतमें, इस बलकी उपासना न होती, तो इस देशके साथ-ही-साथ सारा संसार कभीका रसातल पहुंच गया होता।

* * * *

अव्यर्थ अस्त्र।

संसारमें अव्यर्थ अस्त्र कौनसा है? तोप, बन्दूक और तलवार, आदिकी महिमाको घटा देनेवाला अचूक हथियार कौनसा है?—सत्याग्रह। सत्याग्रह-अस्त्रके चारों ओर तीक्ष्ण धार है। इसका उपयोग हर तरफ और हर तरहसे हो सकता है। यह विना रक्त पातकेही प्रयोग करनेवालेका कल्याण करता है। साथ ही इसके लक्ष्यका अर्थात जिसपर इसका प्रयोग किया जाता है, उसका भी, कल्याण होता है। इसके परिणाम अत्यन्त गूढ और गहन होते हैं। इस अस्त्रमें न तो कभी जङ्ग लगता है और न कोई इसे चुरा सकता है। सत्याग्रही परस्परकी प्रतिद्वन्द्विनामें कभी नहीं थकते।

* * * *

दृढ़ प्रतिज्ञता।

एक बार कही हुई बातका मरण पर्यन्त पालन करना ही दृढ़ प्रतिज्ञता कहलाता है। वास्तवमें सच्चा वीर वही कहा जा सकता है, जो गोलियोंकी बौछार होते हुए भी अपने स्थानपर डटा रहे। यद्यपि महर्षि दुर्वासाने राजा अम्बरीष-पर बड़े बड़े भीषण आक्रमण किये, जो कुछ बुरा भला जीमें आया, कह डाला, पर अम्बरीषने उनकी ओर आँखें उठाकर देखातक नहीं। वे अपने स्थानपर बराबर डटे रहे। इसीसे सत्यप्रतिज्ञोंमें हरिश्चन्द्रके बाद दूसरा नम्बर उन्हींका है।

* * * *

सभ्यता।

सभ्यता उस आचरणको कहते हैं, जिसकी प्रेरणासे मनुष्य अपने कर्त्तव्यका पालन करता है। अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें करना, नीतिका पालन करना है। वास्तवमें नीति और नियमोंका भले प्रकारसे पालन करनेसेही हम अपने सच्चे स्वरूप को पहचान सकते हैं। बस, सभ्यताका सच्चा अर्थ यही है। जो कुछ इसके विरुद्ध है, वह सभी असभ्यता है।

* * * *

शुद्ध सभ्यता।

यदि आप शुद्ध सभ्यताकी मूर्त्ति देखना चाहते हैं, तो आप पुराण कथित तपोवन वासी ऋषियोंके जीवनपर दृष्टिपात कीजिये। भारतमें, किसी समय, घर घर शुद्ध सभ्यताका

दयाका महत्त्व।

दयाका बलही आत्म बलका परिचायक है। जिसमें दया है, उसकी आत्माको अतीव उन्नत समझना चाहिये। इस दया बलने ही भारतको आजतक अक्षुण्ण अवस्थामें रखा है। राजा शिवि, दधीचि और अन्यान्य पुराण-प्रसिद्ध देवात्माओंके नाम आजतक संसारमें अमर हैं। इसका एकमात्र कारण, दया है। इस बलकी सिद्धिके प्रमाण इतिहासमें पग-पगपर प्राप्त होते हैं। यदि संसारमें, विशेषकर भारतमें, इस बलकी उपासना न होती, तो इस देशके साथ-ही-साथ सारा संसार कभीका रसातल पहुँच गया होता।

* * * *

अव्यर्थ अस्त्र।

संसारमें अव्यर्थ अस्त्र कौनसा है? तोप, बन्दूक और तलवार, आदिकी महिमाको घटा देनेवाला अचूक हथियार कौनसा है?—सत्याग्रह। सत्याग्रह-अस्त्रके चारों ओर तीक्ष्ण धार है। इसका उपयोग हर तरफ और हर तरहसे हो सकता है। यह बिना रक्त पातकेही प्रयोग करनेवालेका कल्याण करता है। साथ ही इसके लक्ष्यका, अर्थात जिसपर इसका प्रयोग किया जाता है, उसका भी, कल्याण होता है। इसके परिणाम अत्यन्त गूढ़ और गहन होते हैं। इस अस्त्रमें न तो कभी जङ्ग लगता है और न कोई इसे चुरा सकता है। सत्याग्रही परस्परकी प्रतिद्वन्द्वितामें कभी नहीं थकते।

* * * *

दृढ़ प्रतिज्ञता।

एक बार कही हुई बातका मरण पर्यन्त पालन करना ही दृढ़ प्रतिज्ञता कहलाता है। वास्तवमें सच्चा वीर वही कहा जा सकता है, जो गोलियोंकी बौछार होते हुए भी अपने स्थानपर डटा रहे। यद्यपि महर्षि दुर्वासाने राजा अम्बरीष-पर बड़े बड़े भीषण आक्रमण किये, जो कुछ बुरा भला जीमें आया, कह डाला, पर अम्बरीषने उनकी ओर आँखें उठाकर देखातक नहीं। वे अपने स्थानपर बराबर डटे रहे। इसीसे सत्यप्रतिज्ञोंमें हरिश्चन्द्रके बाद दूसरा नम्बर उन्हींका है।

* * * *

सभ्यता।

सभ्यता उस आचरणको कहते हैं, जिसकी प्रेरणासे मनुष्य अपने कर्त्तव्यका पालन करता है। अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें करना, नीतिका पालन करता है। वास्तवमें नीति और नियमोंका भले प्रकारसे पालन करनेसेही हम अपने सच्चे स्वरूप को पहचान सकते हैं। बस, सभ्यताका सच्चा अर्थ यही है। जो कुछ इसके विरुद्ध है, वह सभी असभ्यता है।

* * * *

शुद्ध सभ्यता।

यदि आप शुद्ध सभ्यताकी मूर्त्ति देखना चाहते हैं, तो आप पुराण कथित तपोवन वासी ऋषियोंके जीवनपर दृष्टिपात कीजिये। भारतमें, किसी समय, घर घर शुद्ध सभ्यताका

दयाका महत्व।

दयाका बलही आत्म बलका परिचायक है। जिसमें दया है, उसकी आत्माको अतीव उन्नत समझना चाहिये। इस दया बलने ही भारतको आजतक अक्षुण्ण अवस्थामें रखा है। राजा शिवि, दधीचि और अन्यान्य पुराण-प्रसिद्ध देवात्माओंके नाम आजतक संसारमें अमर हैं। इसका एकमात्र कारण, दया है। इस बलकी सिद्धिके प्रमाण इतिहासमें पग पगपर प्राप्त होते हैं। यदि ससारमें, विशेषकर भारतमें, इस बलकी उपासना न होती, तो इस देशके साथ-ही-साथ सारा ससार कभीका रसातल पहुंच गया होता।

* * * *

अव्यर्थ अस्त्र।

ससारमें अव्यर्थ अस्त्र कौनसा है? तोप, बन्दूक और तलवार, आदिकी महिमाको घटा देनेवाला अचूक हथियार कौनसा है?—सत्याग्रह। सत्याग्रह-अस्त्रके चारों ओर तीक्ष्ण धार है। इसका उपयोग हर तरफ और हर तरहसे हो सकता है। यह बिना रक्त पातकेही प्रयोग करनेवालेका कल्याण करता है। साथ ही इसके लक्ष्यका अर्थात जिसपर इसका प्रयोग किया जाता है, उसका भी, कल्याण होता है। इसके परिणाम अत्यन्त गूढ़ और गहन होते हैं। इस अस्त्रमें न तो कभी जङ्ग लगता है और न कोई इसे चुरा सकता है। सत्याग्रही परस्परकी प्रतिद्वन्द्विता में कभी नहीं थकते।

* * * *

दृढ़ प्रतिज्ञता।

एक बार कही हुई बातका मरण पर्यन्त पालन करना ही दृढ़ प्रतिज्ञता कहलाता है। वास्तवमें सच्चा वीर वही कहा जा सकता है, जो गोलियोंकी बौछार होते हुए भी अपने स्थानपर डटा रहे। यद्यपि महर्षि दुर्वासाने राजा अम्बरीष-पर बड़े बड़े भीषण आक्रमण किये, जो कुछ बुरा भला जीमें आया, कह डाला, पर अम्बरीषने उनकी ओर आँखें उठाकर देखातक नहीं। वे अपने स्थानपर बराबर डटे रहे। इसीसे सत्यप्रतिज्ञोंमें हरिश्चन्द्रके बाद दूसरा नम्बर उन्हींका है।

* * * *

सभ्यता।

सभ्यता उस आचरणको कहते हैं, जिसकी प्रेरणासे मनुष्य अपने कर्त्तव्यका पालन करता है। अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें करना, नीतिका पालन करना है। वास्तवमें नीति और नियमोंका भले प्रकारसे पालन करनेसेही हम अपने सच्चे स्वरूप को पहचान सकते हैं। बस, सभ्यताका सच्चा अर्थ यही है। जो कुछ इसके विरुद्ध है, वह सभी असभ्यता है।

* * * *

शुद्ध सभ्यता।

यदि आप शुद्ध सभ्यताकी मूर्त्ति देखना चाहते हैं तो प्राचीन कथित तपोवन वासी ऋषियों

दयाका महत्त्व।

दयाका बलही आत्म बलका परिचायक है। जिसमें दया है, उसकी आत्माको अतीव उन्नत समझना चाहिये। इस दया बलने ही भारतको आजतक अक्षुण्ण अवस्थामें रखा है। राजा शिवि, दधीचि और अन्यान्य पुराण-प्रसिद्ध देवात्माओंके नाम आजतक संसारमें अमर हैं। इसका एकमात्र कारण, दया है। इस बलकी सिद्धिके प्रमाण इतिहासमें पग-पगपर प्राप्त होते हैं। यदि संसारमें, विशेषकर भारतमें, इस बलकी उपासना न होती, तो इस देशके साथ-ही-साथ सारा संसार कभीका रसातल पहुँच गया होता।

* * * *

अव्यर्थ अस्त्र।

संसारमें अव्यर्थ अस्त्र कौनसा है? तोप, बन्दूक और तलवार, आदिकी महिमाको घटा देनेवाला अचूक हथियार कौनसा है?—सत्याग्रह। सत्याग्रह-अस्त्रके चारों ओर तीक्ष्ण धार है। इसका उपयोग हर तरफ और हर तरहसे हो सकता है। यह बिना रक्त पातकेही प्रयोग करनेवालेका कल्याण करता है। साथ ही इसके लक्ष्यका, अर्थात जिसपर इसका प्रयोग किया जाता है, उसका भी, कल्याण होता है। इसके परिणाम अत्यन्त गूढ़ और गहन होते हैं। इस अस्त्रमें न तो कभी जङ्ग लगता है और न कोई इसे चुरा सकता है। सत्याग्रही परस्परकी प्रतिद्वन्द्विता में कभी नहीं थकते।

* * * *

दृढ़ प्रतिज्ञता।

एक बार कही हुई बातका मरण पर्यन्त पालन करना ही दृढ़ प्रतिज्ञता कहलाता है। वास्तवमें सच्चा वीर वही कहा जा सकता है, जो गोलियोंकी बौछार होते हुए भी अपने स्थानपर डटा रहे। यद्यपि महर्षि दुर्वासाने राजा अम्बरीष-पर बड़े बड़े भीषण आक्रमण किये, जो कुछ बुरा भला जीमें आया, कह डाला, पर अम्बरीषने उनकी ओर आँखें उठाकर देखातक नहीं। वे अपने स्थानपर बराबर डटे रहे। इसीसे सत्यप्रतिज्ञोंमें हरिश्चन्द्रके बाद दूसरा नम्बर उन्हींका है।

* * * *

सभ्यता।

सभ्यता उस आचरणको कहते हैं, जिसकी प्रेरणासे मनुष्य अपने कर्त्तव्यका पालन करता है। अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें करना, नीतिका पालन करना है। वास्तवमें नीति और नियमोंका भले प्रकारसे पालन करनेसेही हम अपने सच्चे स्वरूप को पहचान सकते हैं। बस, सभ्यताका सच्चा अर्थ यही है। जो कुछ इसके विरुद्ध है, वह सभी असभ्यता है।

* * * *

शुद्ध सभ्यता।

यदि आप शुद्ध सभ्यताकी मूर्त्ति देखना चाहते हैं, तो आप पुराण कथित तपोवन वासी ऋषियोंके जीवनपर कीजिये। भारतमें, किसी समय, घर घर शुद्ध

कायर होगये हैं। यदि आज हमारा जीवन संयम शील है तो हम इसी क्षण इच्छा-जीवी हो जायें—अर्थात् जो कुछ चाहें, वही प्राप्त करले सकते हैं।

*   *   *   *

भाषा और शिक्षा।

भारतीयोंको सच्चा ज्ञान देनेवाली वही भाषा है, उथल पुथल मचानेको शक्ति रखनेवाली वही भाषा है ईश्वरके कानोंतक आवाज पहुँचानेवाली वही भाषा है, जो हमें जन्मके साथ प्राप्त हुई है, अर्थात् जिसे हमने अपनी सीखा है। यदि हमें अपनी भाषापर अरुचि होगी, तो हमारा राष्ट्र कभी स्वराज्य-भोगी न हो सकेगा।

वास्तविक शिक्षाका यही उद्देश्य होना चाहिये, कि हम जीवन-संग्राममें प्रेमके द्वारा घृणापर, सत्यके द्वारा असत्यपर और सहन शीलताके द्वारा कष्टोंपर विजय प्राप्त कर सकें। हमारे यहाँके विद्यार्थियोंको सांसारिक ज्ञानकी शिक्षा दिलानेके पहले, आत्म ज्ञानकी शिक्षा दिलानी चाहिये। प्रेमसे परिचय कराना चाहिये। उन्हें आत्माकी समस्त शक्तियोंका ज्ञान करा देना चाहिये, क्योंकि मस्तिष्कमें भरे हुए ज्ञान या शिक्षाका जितना अंश भविष्यमें हमारे बालकोंकी सहायता कर सकेगा, वही सच्चा ज्ञान सिद्ध हो सकेगा। साथही जीवनमें बड़े बड़े कष्टोंसे प्राप्त की हुई शिक्षाको दासत्वकी बेड़ियाँ पहना देना या जीविकाका साधन बना डालना भी एक नीच प्रवृत्ति है। जीविका-उपार्जनका साधन शरीर है, मस्तिष्क नहीं।

त्मा पर—ज्ञानके भाण्डारपर- जीविकार्जनका बोझा क्यों
दा जाये ?

* * * *

स्वदेशी।

विदेशकी हजारगुनी चमकदार और सस्ती वस्तुओंपर पदा-
ात कर—अपने देशकी बनी हुई समस्त वस्तुओंका उपयोग
रनाही 'स्वदेशी' कहलाता है। इस स्वदेशीमें विदेशी मेशीनोंकी
हायतासे बनी हुइ देशी वस्तुओंका समावेश नहीं है, क्योंकि
ाधुनिक सभी विदेशी मेशीनें पाश्चात्य सभ्यताका प्रचार करती
है और मैं उसमें स्पष्ट महापाप देख रहा हूँ। विदेशी मेशीनोंकी
बदौलत जो लोग धनवान् बन बैठे हैं, उनकी नीति उतनी
उज्ज्वल, उतनी निर्मल नहीं है, जितनी एक भारतीय श्रम
जीवीकी होती है। निर्धन भारतके लिये पराधीनतासे मुक्त
होनेकी कुछ न-कुछ आशा अवश्य है। पर अनीतिसे धनवान्
बने हुए भारतको त्रिकालमें भी स्वाधीनताका परम सुख नहीं
प्राप्त हो सकता। अनीतिसे कमाया हुआ पैसा मनुष्यको नीच
बना डालता है। जो दुर्गुण विषयोंकी आसक्तिमें है, वही
पैसेमें है। इन दोनोंका दंशन साँपके डँसनेसे भी अधिक
मारात्मक है। सर्प-दंशन शरीरका नाश करकेही पीछा छोड
देता है, पर पैसे और विषयोंका दंशन शरीर, प्राण, मन—सब
कुछ लेकर भी पीछा नहीं छोडता। इसलिये मिलें और मेशीनें
देशको उन्नत बनानेमें किसी समय लाभ प्रद सिद्ध नहीं हो सकतीं।

* * * *

६—यदि कोई मनुष्य तुम्हें जल पिलाये और उसके बदलेमें तुम भी उसे जल पिला दो, तो तुम्हारा यह काम सत्य की दृष्टिमें तनिक भी प्रशंसाके योग्य नहीं है। प्रशंसाके योग्य तो तुम उसी समय हो सकोगे, जब तुम अपने अपकारीके साथ भी उपकारका बर्त्ताव करोगे।

* * * *

७—यदि हमारे धर्मका आदर्श कर्त्तव्य-पालन द्वारा मिल सकता है, तो आप सदा-सर्वदा अपने कर्त्तव्यकाही ध्यान रखिये। कर्त्तव्य पालनमें आपको कभी मानव शक्तिसे डरनेकी आवश्यकता न होगी। उस समय आप केवल परमात्माकोही नेत्रोंके सम्मुख उपस्थित देखेंगे।





महात्मा गान्धी और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती कस्तूरी बाई।

Portrait Press Calcutta

गान्धी-गीता

उपोद्घात।

अवतार-वाद।

संसारका यह नियम है, कि जबतक मनुष्य दासता द्वारा जैसे तैसे धनोपार्जन कर, भरपेट अन्न पा, जीवन व्यतीत करता रहता है, तबतक वह खूब आराम और आनन्दका अनुभव करता है। उस समय न तो उसके मनमें किसी प्रकारकी उच्च भावमयी उत्तेजनाही उत्पन्न होती है, न किसी प्रकारकी स्फूर्ति ही। पशुओं और पक्षियोंकी तरह खा पीकर दिन बिता दिया और रातको निश्चिन्त हो सो रहे। इस प्रकार जिस देशमें एक दो नहीं, करोड़ों प्राणी, पशु जीवन व्यतीत करते हों, उस देशमें जागृति होना एक अनहोनी सी बात है। किन्तु जब उस देशको, इस घृणित प्रकारसे जीवन व्यतीत करते करते युगों बीत जाते हैं और सर्वत्र अकर्मण्यता तथा अधःपतनका साम्राज्य फैल जाता है, तब विधिके विधानके अनुसार सहसा उसी मानव समाजमें एक ऐसी आत्माका आविर्भाव होता है

जो पैदा होनेके साथही उस जीवनकी निरर्थकताको समझकर तत्काल उसके विरुद्ध खड्गहस्त हो उठती है। उसके तत्कालीन अवस्था किसी प्रकार आकर्षित नहीं कर पाती। उसकी मानस-दृष्टि, स्वार्थमय क्षुद्र जीवनसे अतीत स्थानपर—दास रत्न और भोग विलास भरे आलस्य-जीवनसे परे—एक बड़ेही उन्नत, बड़ेही पवित्र और बड़ेही सुन्दर-जीवनके चित्रका दर्शन करती है। इस आदर्श जीवनका चित्र, उसकी दृष्टिमें ऐसा सुन्दर और ऐसा सच्चा प्रतीत होता है, कि उसकी तुलनामें यह दासत्वमय, स्वार्थमय और अत्यन्त तुच्छ सांसारिक जीवन नितान्त घृणित प्रतीत होने लगता है। वह-अद्भुत आत्मा तत्कालीन तुच्छ जीवनको भुलाकर, दिन रात भविष्यके पटपर एक नवीन अथच महत्तर जातीय जीवनकी मूर्त्ति अङ्कित करती हुई तन्मय हो रहती है। कुछ दिनों बाद इस आदर्श जीवनकी नित्य साधना उसके हृदयमें नवीन शक्ति, नवीन उद्यम और असीम साहसका सञ्चार कर देती है। उस समय उसके कण्ठमें असीम वाग्मिता, भाषामें प्राणस्पर्शी ओज और प्राणोंमें दुर्जय शक्तिका स्रोतसा प्रवाहित होने लगता है। फिर तो वह आत्मा, परमात्माकी प्रेरणा पाकर, अपने अपराजित संकल्पसे जातीय जीवनको तत्कालीन दुर्गतिसे निकाल, भविष्यत्के उन्नत और उज्ज्वल राज्यमें खींच ले जाती है। ऐसी महिमामयी आत्माएँ जिस समय असाधारण बलके साथ अपना बनाया आदर्श देश-भरके मानवोंको दान करती हैं, उस समय वह आदर्श

तूफानसे उमडे हुए समुद्रकी भाँति जन समाजको एक विलक्षण रीतिसे आन्दोलित कर देता है एव उस आन्दोलनमें जो कोई पड जाता है, उसे सबसे पहले उस आदर्शके सम्मुख आत्म बलि देनी पडती है। उस समय आत्म बलि करनेको तत्पर हुए लोग ढूँढ ढूँढकर घृणित, दुष्ट और जघन्य अत्याचारोंका मूलोच्छेद करने लगते हैं और उनके इस मूलोच्छेदनमें जो कोई व्याघात पहुँचाता है, वह—चाहे महान् शक्ति सम्पन्न सम्राट् हो अथवा क्षुद्रसे क्षुद्रतम प्राणी—उसी समय उनका शिकार बन जाता है और वे इस शिकारको जैसा चाहें, वैसा नाच नचाने लगते हैं।

* * * *

श्रीकृष्णका भारत।

उक्त बातकी सत्यताका दृष्टान्त हमें सबसे पहले महाभारतके युगमें मिलता है। द्वापर-युगके अन्तमें भारतके अधिवासी बडेही आलसी होगये थे, विशेषकर क्षत्रियोंमें उस समय सर्वाधिक अलसता और उच्छृङ्खलता आ गयी थी। उनकी इस अलसता और उच्छृङ्खलताके कारण, देशसे एकता और धर्म दिन दिन कूँच करते जाते थे। सब जगह मनमानी हो रही थी। कंसने यदि एक जातिको पराधीनताकी बेडियाँ पहना रखी थीं, तो जरासन्धने दूसरी जातिको अकर्मण्य बना रखा था। एक ओर शिशुपाल अपनी उच्छृङ्खल प्रवृत्तिको चरितार्थ कर रहा था, तो दूसरी ओर भूरिश्रवा नवीनता और मौलिकताका विरोधी

धना हुआ था। सारांश यह, कि उस समय न्याय और धर्मके क्षेत्रोंमें सर्वत्र घोर अन्धकार फैला हुआ था। इस सर्व व्यापी अन्धकारको फैलानेके कारणीभूत केवल क्षत्रिय थे। उन दिनों क्षत्रिय जाति अपने आचरणोंकी बदौलत स्वयं तो नाश पथपर अग्रसर होही रही थी, साथ ही उसने समस्त देश-को भी उसी रास्तेपर लेजाना शुरू कर दिया था।

परमात्माने अपनी आँखोंसे ये सारे काण्ड देखे और तत्काल उस कलंकित शासक जातिसे भारतका उद्धार करनेके लिये, षोडश कलाओंके साथ अपनी एक विभूति भेजी, जिसने उसी दुस क्षत्रिय जातिमें जन्म ग्रहणकर, श्रीकृष्णके नामसे संसार-को एक नवीन ज्योतिका दर्शन कराया।

श्रीकृष्णने अपने बाल्य कालके चरित्रोंसेही संसारको इस बातकी सूचना दे दी, कि भारतकी शासक-जातिमें कोई विपद् परिवर्त्तन होगा। इसके बाद जब वे कुछ बड़े और हुए, तब उन्होंने बड़ी विचक्षणताके साथ तत्काल परीक्षा की। उस समय समाजमें लिया था, परीक्षा करनेपर वे गये। अब तो उन्हें वे धीरे धीरे उस शक्तिका उनका जीवन भविष्यमें समाप्ति होजाने और उद्यत अपरिसीम बलशाली हो उठे।

कल्पनाएँ उठीं, जिन दिव्य-तत्वोंका ज्ञान हुआ, उनके सहारे उन्होंने तत्काल अपनी जाति और अपने देशके सुधारकी अव्यर्थ योजना कर डाली। इस दिव्य ज्ञानकी प्राप्तिके बाद वे स्वयं एक देशके राजा बने। साथ ही उनका नाता एक ऐसे राज-कुलसे जुड़ा हुआ था, जो उस समयका सार्वभौमिक सम्राट् था। इस कुलका नाम था 'कुरु कुल'।

कुरुकुलकी श्रीकृष्णपर विशेष ममता थी, जिसपर उसका एक पक्ष तो उनका बड़ाही अनुगत था। इस अनुरक्त पक्षको पाकर श्रीकृष्णको परम प्रसन्नता हुई और उन्होंने इसीके द्वारा जाति तथा देशका सुधार करना स्थिर किया।

श्रीकृष्णने देखा, कि क्षत्रिय-जाति और उसके द्वारा शासित भारत देशका सुधार करनेसे पहले, जातिमें एकता स्थापित होनेकी नितान्त आवश्यकता है और यह एकता ऐसे पुरुषकी अध्यक्षतामें होनी चाहिये, जिसकी धार्मिकता और सुजनताकी कहीं तुलना न हो। साथही वह पुरुष सम्राट् कुलका होना चाहिये; क्योंकि सम्राट् कुलका पुरुष न होनेपर, लोगोंमें कुछ ही समय बाद भीषण ईर्ष्याग्नि प्रज्वलित हो उठेगी और इसका फल यह होगा, कि उद्देश्य-भ्रष्ट होकर कार्य कर्त्ताओंमें पक्षपातका कलंक लग जायेगा। अनुसन्धान और विवेचना करनेपर उन्हें धर्मराज युधिष्ठिर इस योग्य देख पड़े।

युधिष्ठिर परले सिरेके धर्म रक्षक और प्रजा प्रिय राजा थे। उनमें दया, न्याय परायणता, सत्य प्रतिज्ञता और पुण्य प्रवृत्तिका

असाधारण समावेश था। उस युगमें वे धर्म पुत्र कहे जाते थे। रहा बल-विक्रममें असाधारण होना, सो इसकी कमी उनके परम भक्त भीम और अर्जुन पूरी कर देते थे। अस्तु।

प्राचीन कालमें राजसूय यज्ञ शासक-जातिमें एकता स्थापनका द्वार समझा जाता था। अतः श्रीकृष्णने युधिष्ठिरको राजसूय-यज्ञ करनेका उपदेश दिया। युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णकी बात मान ली और यथासमय राजसूय यज्ञका अनुष्ठान किया गया।

इस राजसूय यज्ञमें एकताके दो प्रबल विरोधी राजाओंका बलिदान हुआ, एक तो महाराज जरासन्धका और दूसरे महाराज शिशुपालका। भगवान् श्रीकृष्णकी उद्देश्य-सिद्धिका यहींसे सूत्रपात हुआ।

जरासन्धने अपनी ही जातिके प्रायः एकसौ राजाओंको, वध करनेके लिये कैद कर रखा था एवं शिशुपालकी अधार्मिकता अशिष्टता और अन्याय परायणतासे भारतके अनेक कुलोंका नाश हो चुका था। इन दोनों राजाओंकी अत्या... लीलाएँ उस समय सभीको खल रही थीं। उनका तत्काल अन्त कर देना ही उचित स...

पाठकगण, यदि सच पूछिये, तो यज्ञानुष्ठान भी तत्कालीन राजाओंकी एक यज्ञका होता अर्थात् एकत्व समितिका। ... यह देखना चाहते थे, कि ...

युगान्तरके पक्षपाती और कितने विरोधी हैं? परीक्षा सफल हुई, और घरमें ही पोल निकली। कुरुकुलका कर्णधार दुर्योधन ऊपरसे तो एकताका पक्षपाती बनता था, पर भीतरसे उसका घोर विरोधी था। वह ईर्ष्याका अवतार था; अतएव युधिष्ठिरका इतना मान होते देख, जल उठा। उसने कौशलसे—अन्याय और अधर्मका आश्रय लेकर युधिष्ठिरको उस अध्यक्ष-पदसे उतार दिया और स्वयं उस स्थानका अधिकारी बन बैठा। भगवान्‌ने देख लिया, कि मूलहीमें कीड़ा लगा हुआ है। भारतके सम्राट कुलमें ही देशको अवनत कर देनेवाले कारण घुसे हुए हैं। बस, सुधारका पथ मिल गया! उन्होंने सोचा, कि इस कुरुकुलका पतन होते ही देशमें नवजागरण आ जायेगा। तनुसार वे कलिके योग्य भेद दण्ड-प्रधान राजनीतिका अनुसरण कर गर्वित क्षत्रिय जातिके बल नाश द्वारा भावी नवीन साम्राज्य को निष्कण्टक बना देनेको तैयार हुए।

उन्होंने देशभरमें कौरवोंके अन्याय अत्याचारोंकी कथा परोक्ष रूपमें प्रचारित कर प्रजाकी पराधीनतामयी आलस्य निद्राको तोड़ा। इस निद्राके टूटतेही हिमालयसे लेकर कन्या कुमारीतक सारा देश काँप उठा। चारों ओर तूफानकासा शोर मच गया, कि "हमारा वर्त्तमान सम्राट् महा अन्यायी है। हम उसके स्थानपर अपने पुराने सम्राट् युधिष्ठिरको ही देखना चाहते हैं।"

युधिष्ठिरने भी, अपनी पतनावस्थाके दिन व्यतीत हो जाने-

पर दुर्योधनसे अपना साम्राज्य वापस माँगा। पर क्या अन्यायी लोग अन्यायसे पायी हुई वस्तुको सहजही छोड़ना चाहते हैं ? दुर्योधनने उत्तरमें स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया, कि "यह राज्य तुम्हारा नहीं, हमारा है। भलेही सारा साम्राज्य नष्ट हो जाये, पर हम इसमेंसे तुम्हें सुईकी नोकके बराबर हिस्सा भी न देंगे।" इस उत्तरने देशको मतवाला बना दिया और उस समय, जितने न्याय-पक्षके पक्षपाती शक्तिशाली राजा थे, वे सब युधिष्ठिरकी सहायता करनेके लिये उनके पास आ पहुँचे। उन लोगोंने युधिष्ठिरको भाँति भाँतिकी उत्तेजनाएँ देकर दुर्योधनसे युद्ध करनेके लिये उत्तेजित किया। स्वय श्रीकृष्ण इस कार्य्यके अगुआ हुए।

यथासमय कौरव और पाण्डवोंमें युद्ध हुआ और उसमें भारतभरके अभिमानी क्षत्रियोंकी विश्व विजयी अर्जुनके हाथसे युद्ध यज्ञमें आहुति हो गयी।

भगवान् श्रीकृष्ण अपने उद्देश्यमें सफल हो गये। आतताइयोंका अन्त होतेही देश भरमें शान्ति और एकता स्वयं मूर्ति धारणकर आ विराजीं। सारे देशकी प्रजा अपने पुराने न्याय निष्ठ शासकको पाकर सुख-शान्तिके साथ स्वर्गीय जीवनका आनन्द अनुभव करने लगी।

अब मनोनीत आदर्शकी प्रतिष्ठा हो जानेपर भगवान् श्रीकृष्ण अपने कुलका सुधार करनेमें लगे, जब उसका भी सुधार हो गया, तब उन्होंने ससारमें अपनी मानवी लीलाका सवरण कर लिया।

बुद्ध-देवका भारत।

श्रीकृष्णका किया हुआ यह सुधार युगोंतक देशको उन्नत किये रहा। भारतकी यह उन्नति अनेक प्रकारसे आघात पड़ने पर भी, तीन हजार वर्षोंतक अक्षुण्ण बनी रही।

तीन हजार वर्ष बाद, महाराज विक्रमादित्यके स्वर्गवासी हो जानेपर, काल माहात्म्य वश इस देशमें फिर शिथिलता और अवनतिका दौर दौरा हुआ। इस बार अवनतिकी छाप देश जीवनके अन्य अंगोंपर न पड़कर, इसके प्राण-स्वरूप धर्मपरही पड़ी। देशमें अगणित अधर्मियोंका प्रादुर्भाव हो गया एवं उनके उपद्रवोंसे कुछ कालके लिये सारा देश निर्जीव सा हो चला। धर्मका ढोंग रचकर लोग खुले-आम जीव हत्या और मनुष्योंपर अत्याचार करने लगे। भारतीय जनता उस हत्या काण्डको धर्मके आचरणसे ढका होनेके कारण चुपचाप सहन करती रही। क्रमशः जब वह इस अवस्थाकी आदी हो गयी और युगोंपर युग इसी प्रकार बीतते चले गये, तब फिर इस देशमें एक महान् आत्माका आगमन हुआ। कुछ कालके लिये फिर संसारकी शिथिल धमनियोंमें नवीन जागरणकी स्फूर्त्ति पैदा हुई। वह महान् आत्मा और कोई नहीं, स्वयं भगवान् बुद्धदेव थे। बुद्धदेवने अपनी कुमारावस्थामेंही भगवान्‌की दिव्य ज्योतिका दर्शन किया और उस दिव्य ज्योतिके प्रभावसे उन्हें जिस अलौकिक ज्ञानकी प्राप्ति हुई, उसीके बलपर उन्होंने पराधीन धर्मको स्वाधीन जीवनमें लानेका प्रयत्न किया। लेकिन

पर दुर्य्योधनसे अपना साम्राज्य वापस माँगा। पर क्या अन्यायी लोग अन्यायसे पायी हुई वस्तुको सहजही छोड़ना चाहते हैं? दुर्योधनने उत्तरमें स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया, कि "यह राज्य तुम्हारा नहीं, हमारा है। भलेही सारा साम्राज्य नष्ट हो जाये, पर हम इसमेंसे तुम्हें सुईकी नोकके बराबर हिस्सा भी न देंगे।" इस उत्तरने देशको मतवाला बना दिया और उस समय जितने न्याय-पर्य्यायके पक्षपाती शक्तिशाली राजा थे, वे सब युधिष्ठिरकी सहायता करनेके लिये उनके पास आ पहुँचे। उन लोगोंने युधिष्ठिरको भाँति भाँतिकी उत्तेजनाएँ देकर दुर्योधनसे युद्ध करनेके लिये उत्तेजित किया। स्वय श्रीकृष्ण इस कार्य्यके अगुआ हुए।

यथासमय कौरव और पाण्डवोंमें युद्ध हुआ और उसमें भारतभरके अभिमानी क्षत्रियोंकी विश्व-विजयी अर्जुनके हाथसे युद्ध यज्ञमें आहुति हो गयी।

भगवान् श्रीकृष्ण अपने उद्देश्यमें सफल हो गये। आततायियोंका अन्त होतेही देश भरमें शान्ति और एकता स्वयं मूर्त्ति धारणकर आ विराजी। सारे देशकी प्रजा अपने पुराने न्याय निष्ठ शासकको पाकर सुख-शान्तिके साथ स्वर्गीय जीवनका आनन्द अनुभव करने लगी।

अब मनोनीत आदर्शकी प्रतिष्ठा हो जानेपर भगवान् श्रीकृष्ण अपने कुलका सुधार करनेमें लगे, जब उसका भी सुधार हो गया, तब उन्होंने ससारसे अपनी मानवी लीलाका संवरण कर लिया।

बुद्ध-देवका भारत।

श्रीकृष्णका किया हुआ यह सुधार युगोंतक देशको उन्नत किये रहा। भारतकी यह उन्नति अनेक प्रकारके आघात पड़ने पर भी, तीन हजार वर्षोंतक अक्षुण्ण बनी रही।

तीन हजार वर्ष बाद, महाराज विक्रमादित्यके स्वर्गवासी हो जानेपर, काल माहात्म्य वश इस देशमें फिर शिथिलता और अवनतिका दौर दौरा हुआ। इस बार अवनतिकी छाप देश जीवनके अन्य अंगोंपर न पड़कर, इसके प्राण-स्वरूप धर्मपरही पड़ी। देशमें अगणित अधर्मियोंका प्रादुर्भाव हो गया एवं उनके उपद्रवोंसे कुछ कालके लिये सारा देश निर्जीव सा हो चला। धर्मका ढोंग रचकर लोग खुले-आम जीव-हत्या और मनुष्योंपर अत्याचार करने लगे। भारतीय जनता उस हत्या काण्डको धर्मके आवरणसे ढका होनेके कारण चुपचाप सहन करती रही। क्रमश जब यह इस अवस्थाकी आदी हो गयी और युगोंपर युग इसी प्रकार बीतते चले गये, तब फिर इस देशमें एक महान् आत्माका आगमन हुआ। कुछ कालके लिये फिर संसारकी शिथिल धमनियोंमें नवीन जागरणकी स्फूर्ति पैदा हुई। यह महान् आत्मा और कोई नहीं, स्वय भगवान् बुद्धदेव थे। बुद्धदेवने अपनी कुमारावस्थामेंही भगवान्‌की दिव्य ज्योतिका दर्शन किया और उस दिव्य ज्योतिके प्रभावसे उन्हें जिस अलौकिक ज्ञानकी प्राप्ति हुई, उसीके बलपर उन्होंने पराधीन धर्मको स्वाधीन जीवनमें लानेका प्रयत्न किया। लेकिन

इस स्वाधीनताकी प्रतिष्ठाके लिये उन्हें बड़े बड़े त्याग करने पड़े, स्वयं अपने आपको न्यौछावर कर देना पड़ा।

भगवान् बुद्धके इस महान् त्यागने उनकी उद्देश्य सिद्धिमें अपूर्व सहायता प्रदान की और यह उस महान् त्यागकाही प्रताप था, कि एक बार उन्होंने इस देशमें परिवर्त्तन और संस्कार करनेके लिये जो बुलन्द आवाज उठायी, उसकी ध्वनिने सात समुद्र पार कर, सुदूर देशोंमें भी नवजीवनका सञ्चार कर दिया। उनके किये हुए संस्कारोंसे सारा देश पराधीन जीवनसे बाहर निकलकर स्वाधीन जीवनका भोक्ता बन गया और उसने पृथ्वीके अन्याय देशोंके साथ ही साथ आप भी अपने संस्कारकी प्रधानता स्वीकार की। पाठक! यह उस स्वाभाविक परिवर्त्तनका दूसरा दृष्टान्त है। यह परिवर्त्तन भी अपने ढगका निराला हुआ। लेकिन जितना इसका प्रसार हुआ, उतनाही इसमें कमजोरी रह गयी और इसी कमजोरीके कारण भविष्यमें इस देशके कर्म-जीवनको घोर हानि हुई।

* * * *

चन्द्रगुप्तका भारत।

भगवान् बुद्धके बाद, भारतवासियोंका जीवन कुछ कालतक आनन्दसे कटा; पर यह आनन्द स्थायी न रहा। भगवान् बुद्धने संसारको निर्वाणका उपदेश, जिस लक्ष्यको सामने रखकर किया था, उनके बाद भारतवासीगण उस लक्ष्यको एकदम भूलकर केवल लकीरके फकीर बनने लगे। भारतीय जनताने

उद्योग और परिश्रमको छोड़, प्राणरूप कर्मोंको ताकपर रखकर, हाथ-पर-हाथ रखे—पड़े-पड़े जीवन बितानेमेंही अपने जीवनकी सार्थकता समझ ली। इससे सोनेका भारत बौद्ध-युगके ढाई सौ वर्ष बादही फिर मट्टी हो चला। भगवान् बुद्धके उपदेशोंसे इसका जितना उपकार हुआ था, उससे कहीं अधिक हानि उस धर्मके भिक्षुओंसे हुई। कारण यह, कि उस समय देश भरके लाखों गृहस्थाश्रम बौद्ध मठोंमें परिणत हो गये थे। भारतके करोड़ों व्यक्ति जीवन-व्यापी कर्त्तव्योंसे विमुख होकर केवल मोक्षकी मोहमयी कल्पनामेंही जा फँसे थे। इससे धर्मका प्रकृत आदर्श तो नष्ट हुआही, साथही देशको बहुत कुछ आर्थिक हानि भी उठानी पड़ी। इस हानिका यह परिणाम हुआ, कि देशके कर्णधारोंको देशकी दशा सम्हाले रहना कठिन हो गया और इन कठिनाइयोंको देखकरही सिकन्दर जैसे प्रबल पराक्रमी विदेशी इस देशको हड़प जानेकी चेष्टा करने लगे। लेकिन सिंह कितनाही बूढ़ा और क्षीण शक्ति क्यों न हो जाये, तोभी उसके नामकी महिमा बनीही रहती है। भारत निर्बल हो चला था। लोभ और द्वेष इसकी शासक जातिमें अपना प्रभाव-विस्तार कर रहे थे; किन्तु वीर जननी भारत-भूमि वीरों और विद्वानोंसे एकबारगी शून्य नहीं हो गयी थी। नीतिज्ञ-शिरोमणि चाणक्य और वीर-शिरोमणि चन्द्रगुप्तसे सुपूत उस समय भी भारतके नामकी लाज रखनेके लिये कटिबद्ध थे। अत, यहाँ उस समय विदेशियोंकी दाल न गल सकी और वे चन्द्रगुप्तकी वीर भुजाओं-

से भीषण पराजय पाकर, अपना सा मुँह ले, घर लौट गये। भारत भारतीयोंकाही बना रहा।

* * * *

हिन्दू-साम्राज्यका अन्त।

चन्द्रगुप्तका जमाना बौद्ध-युगमें अच्छा रहा। चाणक्य जैसे नीति-कुशल मंत्रीके प्रतापसे चन्द्रगुप्तने एक दिन 'आदर्श सम्राट्' की पदवी पा ली थी। किन्तु जिस काष्ठमें घुन लग जाता है, उसकी रक्षा लाख चेष्टा करनेपर भी नहीं होती। भारतमें उस समय नाशका कीड़ा लग गया था। इस कीड़ेने अपना खूब प्रभाव फैलाया। धर्मकी प्रबलता नष्ट हो जानेके कारण सारी भारतीय प्रजा और सम्राट्से लेकर सामान्य सामन्ततक एकताकी महिमाको भूलकर ईर्षा, द्वेष, लोभ और अभिमानके उपासक बन गये। यहाँतक कि, सम्राट् अनगपालके युगमें उक्त दुर्गुणोंकी उपासना चरम सीमातक पहुँच गयी। परस्पर मिलकर देशोन्नतिकी चिन्ता करना भूलकर लोग भाई भाइसे विरोध करनेमें ही अपने जीवनकी सार्थकता समझने लगे। सम्राट्के दौहित्रों, पृथ्वीराज और जयचन्द्रतकमें न बनी एवं दोनों एक दूसरेके खूनके प्यासे बन गये।

यह ग्यारहवीं सदीकी बात है। इसी घटनाने राम कृष्णके जन्मसे पवित्र इस भूमिको भवितव्यताके चक्रमें डालकर अनन्तकालके लिये मटियामेट कर दिया। भारतीयोंको आने वाले अनेक युगोंमें पराधीनताकी बेड़ी पहनजानेके लिये विधर्मियों

और विदेशियोंका आवाहन इसीने किया।

ग्यारहवीं सदीके मध्यमें संसारके समस्त देशोंमें यह बात प्रचारित हुई, कि भारतका भविष्य आजकल डाँवाडोल हो रहा है। यहाँका आदर्श ऐक्य-सूत्र सदा सर्वदाके लिये टूट चुका है। इस बातको सुनतेही मुसल्मान राष्ट्र अपने साथ बड़ी बड़ी सेनायें लिये हुए भारतको हड़प जानेके लिये दौड़ पड़े। पर लाख सिर पटकनेपर भी उनकी अभीष्ट सिद्धि नहीं हुई। जिस किसीने भारतकी सीमापर पैर रखा, उसेही बेतरह मुँहकी खानी पड़ी। इसी समय जयचन्द्रने मुहम्मद गोरीको, महाराज पृथ्वी-राजको, सम्राट् पदसे च्युत करनेके लिये सहायतार्थ निमन्त्रित किया। उस समय उस मूर्खने यह सोचनेकी तनिक भी जरूरत नहीं समझी, कि मैं अपनी व्यक्तिगत शत्रुताका बदला कितनी अदूरदर्शिताके साथ ले रहा हूँ। पापीको इस बातका स्वप्नमें भी ध्यान न हुआ, कि मेरे इस जघन्य कृत्यसे भारतकी स्वाधीनताका सूर्य सदा सर्वदाके लिये अस्त हो जायेगा। सारांश यह, कि आसन्न मृत्यु जयचंद्रने उस समय मुहम्मद गोरीको केवल निमन्त्रितही नहीं किया, वरन् सम्राट् पृथ्वीराजके विरुद्ध उसे भरपूर सहायता भी दी।

भारतीय सम्राट्के भाई, कान्यकुब्ज देशके नरेश जयचन्द्रके बलसे बलवान् बना हुआ मुहम्मद गोरी लाखों सैनिकोंको साथ लेकर भारतपर चढ़ आया। सम्राट्ने भारतपर विपत्ति आयी देख, उस अनेकताके युगमें भी अपने गुणोंकी बदौलत भारत

वाणिज्य बडी उन्नत अवस्थामें था।

दूसरा प्रमाण मिस्टर थार्नहन्सका है। वे अपनी Decrip-tion of Moghal India नामक पुस्तकमें लिखते हैं,- 'मुसलमानी युगमें भारतवर्ष वैभव और सम्पत्तिका भाण्डा- था। उस समय यहाँ सर्वत्र उद्योग-धन्धे जारी थे। यहाँकी जनता दिनरात वस्तु निर्माण और कृषि कार्य्यमें लगी रहती थी। यहाँकी प्राय सारी भूमि उर्वरा थी। प्रतिवर्षकी फसल देशकी अनाज सम्बन्धी सारी आवश्यकताओंको पूर्ण कर दिया करती थी। किसानोंको अपने परिश्रमका खूब अच्छा फल मिलता था। वे अन-धान्य पूर्ण रहते थे। यहाँ बडे बडे चतुर कारीगरोंका निवास था। वे लोग यहाके कच्चे मालसे बेशुमार लाजवाब, नफीस और कीमती चीजें बनाते थे। इन वस्तुओंको ससारके सारे सम्यदेश बडे चावसे खरीदते और इस्तेमाल करते थे। यहाँ सूत और वस्त्र बडे मुलायम तथा खूबसूरत बनते थे, जिनकी कहीं तुलना नहीं थी।"

साराश यह, कि मुसलमानी शासनकालमें भारत लुटा अवश्य, पर जिन्होंने उसे लूटा, उन्होंने उसे कितनीही बार बनाया भी। साथही मुसलमान बादशाहोंने इसे कभी अङ्ग भङ्ग करनेकी चेष्टा नहीं की। भारत-रूपी कल्पतरुसे जितने फलोंकी जरूरत हुइ, उतने उन्होंने तोडे, पर उसकी जडको नष्ट करनेकी बात उन्होंने कभी स्वप्नमें भी नहीं सोची; इसीसे मुसलमानी शासन अङ्गरेजी शासनसे अच्छा बताया गया।

फिर सम्राट् अकबरकी शासन-प्रणालीकी तारीफोंसे तो इतिहासका प्रत्येक पृष्ठ भरा हुआ है। उसकी शासन-पद्धतिको देखकर लोगोंको राम राज्यकी याद आ जाती थी। देशकी प्रजा उसकी व्यवस्थाओंसे प्रसन्न होकर "दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा" कहकर महामोदसे नृत्य कर उठती थी। उसके जमानेमें घी दूध और अन्न वस्त्रकी किसीको कमी न थी। लोग एक रुपया मासिकमें सानन्द जीवन बिता सकते थे। अङ्गरेजी राज्यकालके इन कष्ट क्लिष्ट दिनोंमें तो वे बातें अनहोनीसी मालूम पड़ती हैं।

हाँ, तो प्राय साढ़े सात सौ वर्षतक भारतपर शासनकर मुसलमानी साम्राज्य, विधिके विचित्र विधानसे, सोलहवीं सदीके अन्तमें छिन्न-भिन्न होगया। सुविधि और सुव्यवस्थामें नाशका कीड़ा लग गया। एकता और कर्त्तव्य-पालनको भूलकर मुसलमानी राजागण भी हिन्दू राजाओंकी भाँति अत्याचार पूर्ण विलासके अन्ध-भक्त हो गये। इस विलासोन्मादका परमात्माने उन्हें खासा पुरस्कार दिया। आर्योंका प्राचीन निवास सात समुद्र पार रहनेवाली एक गोरी जातिकी गोदमें जा गिरा।

भारत-पतन।

मुसलमानी शासन चिरकालतक भारतपर राज्य कर, जब जीर्ण-दशाको पहुँच रहा था, समस्त साम्राज्यके कल पुर्जे ढीले हो रहे थे, जिस समय एक ओर मराठे और दूसरी ओर सिक्ख लोग भारतमें फिरसे हिन्दू राज्य-स्थापनकी असाध्य चेष्टा कर

रहे थे, उसी समय यूरोपकी अङ्गरेज जातिके कुछ लोग भारतमें व्यापार करने आये। भारतके उदार शासकोंने उन्हें ईश्वरीय नातेसे अपना भाई समझकर व्यापार करनेकी आज्ञा देदी। इन लोगोंने भारतके शासकोंकी आज्ञा और आश्रय पाकर बहुतही थोड़े समयमें भारतके गुजरात और बङ्गाल-प्रान्तोंके बाजारोंको अपनी वस्तुओंसे भर दिया। इतनाही नहीं, भारतको अपने व्यापारका मुख्य स्थल बनानेके लिये इन्होंने यहाँ कई स्थानोंमें कोठियाँ बनाकर स्थायी रूपसे रहना भी शुरू कर दिया।

इन लोगोंके व्यापारी समुदायका नाम था, 'ईस्ट-इण्डिया कम्पनी।' इस कम्पनीकी ओरसे जो लोग भारतमें आये थे, उन्होंने देखा, कि भारत वास्तवमें एक समृद्धि-शाली देश है, यहाँ सुरुचि पूर्ण और सीधे सादे लोगोंका निवास है, साथही यहाँ आजकल स्थान-स्थानपर अशान्ति फैली हुई है। यह देख, इनके मुँहसे लार टपकने लगी—लोभका भूत समा गया और ये सोचने लगे, कि यदि यह देश हमारे अधीन हो जाये, तो हम धन, मान और प्रतिष्ठामें संसारमें अतुलनीय हो जायें।

अबतकके बर्त्तावसे जो अनुभव हुआ है, उसके अनुसार हमें यह कहनेमें कोई पाप नहीं होपाता, कि अङ्गरेज जातिमें कूटनीति कूट कूटकर भरी है। इनके यथार्थ स्वरूपको पहचानना, एक कठिनसे कठिन मसलेको हल कर लेना है। दुनियाके परदेपर आजतक कोई जाति ऐसी कामिल जादूगर साबित नहीं हुई, जैसी अङ्गरेज जाति। कूटनीति शायद इन्हें छठीके दूधके

साथ पिलायी जाती है। मीठी बातोंसे सहजही शत्रुओंपर विजय पालेना, इनके बायें हाथका खेल है। ईष्ट इण्डिया-कम्पनीके व्यापारियोंने ऊपर कहा गया मन्सूबा गाँठ और भारत की तत्कालीन डावाँडोल हालत देखकर इंग्लैण्डसे छिपे छिपे सहायता मँगाली और सहायता मिल जानेपर इन्होंने अपने जातीय गुण कूटनीति द्वारा राजा और प्रजामें यह मतान्तर कराया, कि देखकर आश्चर्य होता है। इन लोगोंने एक ओर तो तत्कालीन शासकोंकी चाटुकारी और दूसरी तरफ राजकर्म-चारियोंको छिपे छिपे अपनी तरफ फोडना शुरू किया। जब ये चारों घाटोंसे दुरुस्त होगये, तब इन्होंने तत्काल देशभरको यह दिखाना शुरू कर दिया, कि अन्याय, अत्याचार और अराजकताको भारतसे दूर करनेके लिये वर्तमान शासकोंसे शासन सूत्र छीन लेना अत्यन्त आवश्यक है। इस आवश्यकतापर सुधारका मुलम्मा फेरा हुआ था, इसीसे भोले-भाले और स्वार्थी मुसलमानोंने तथा मुसलमानोंके धार्मिक अत्याचारोंसे भारी आये हुए हिन्दुओंने इस योजनाको स्वीकार कर लिया और उसी समय बङ्गालमें नवाब सिराजुद्दौला राज्यच्युत कर दिये गये। इस प्रकार एकबार नहीं, कई बार च्युति और नवीन नियुक्ति हुई। अन्तमें बङ्गाल-प्रान्तका शासन भार ईष्ट इण्डिया कम्पनीके हाथमें आ गया।

अङ्गरेजी शासनमें भारत।

बंगाल-प्रान्तमें अपना पैर जमते देखकर ईष्ट इण्डिया-कम्प-

नीके वणिकोंकी बन आयी। वे अब धीरे-धीरे कहीं कूटनीति और कहीं तलवारके जोरसे सारे भारतमें अपना प्रभाव फैलाने लगे। इनकी भाग्य लक्ष्मी सीधी थी, अतः जिस भारतको पहले सैकड़ों विदेशी, लाख चेष्टाएँ करके भी, न पा सके थे, उसे ही इन्होंने अनायास हस्तगत कर लिया।

भारतके हस्तगत होतेही सबसे पहले ये लोग यहांके बड़े चढ़े शिल्पको नेस्त नाबूद करनेमें लगे। भाँति भाँतिकी चालें चलकर यहांके कारीगरोंके हाथ कटवा दिये गये। पाठक जानते ही हैं, कि किसी देशको कमजोर और मुर्दा बना डालनेका सबसे आसान तरीका उसके शिल्पको नष्ट कर डालनाही है। अगरेजोंने उक्त प्रकारसे भारतीय शिल्पको नष्ट कर बहुत कुछ सिद्धि पा ली और भारतके प्राय सभी प्रदेशोंमें विलायती वस्तुओंका उपयोग होने लगा। भारतके शिल्पको नष्ट कर इन्होंने यहांकी कृषि,वाणिज्य औरपोत-निर्माणकी कलापर छापा मारा। मनमाना लगान लगाकर कृषि, अगणित टैक्स बैठाकर व्यापार और द्रव्योंको नष्ट कर पोत कलाका नाश कर डाला गया। कृषक और कारीगर मजदूरी करनेके लिये बाध्य हुए और व्यापारियोंने दलाली द्वारा अपना उदर-पोषण करना शुरू कर दिया। उस समय जिस किसी देश हितैषी सज्जनने अगरेजोंके इन अत्याचारों के खिलाफ आवाज उठायी, उसीको फाँसीतक दे दी गयी। महाराज नन्दकुमार और राजा चेतसिंह, इसके प्रमाण हैं।

भारतमें विद्रोह।

उक्त सारे काण्ड ईसी सन् १७५७ से लेकर १८५०तक होते रहे। इस बीचमें अंगरेजोंने सारी प्रजाको निर्जीव और अपने हाथकी कठपुतली बना दिया। अधिकांश लोग नौकरियाँ करके और कितनेही अपने भाइयोंका गला कटवाकर उदर-पोषण करने लगे। इस प्रकार जब कुछ समय बीत गया और सभी लोग दासत्वकी कठोर शृङ्खलामें बँध गये, तब अङ्गरेजोंने और भी दिन दूने अत्याचार करने आरम्भ कर दिये। उन अत्याचारोंकी सीमा यहाँतक बढ़ गयी, कि भारतके चार करोड़ निवासी निरन्न और नग्न रहकर मौतके शिकार होने लगे।

इस करुण दृश्यको देख और न्यायका डङ्का पीटनेवाली ईष्ट-इण्डिया कम्पनीके अन्यायोंसे परेशान होकर महाराष्ट्रके एक वीर योद्धाने इनके विरुद्ध तलवार पकड़ी। इस वीरका नाम था—नानासाहब धुंधुपन्त। नानासाहब विद्या, बुद्धि और पराक्रममें अतुलनीय थे। अङ्गरेज इतिहास लेखकोंने यद्यपि इनका चरित्र अति जघन्य रूपमें अंकित किया है, पर सच पूछिये, तो धुंधुपन्त एक सच्चे स्वदेश सेवक थे।

नानासाहबने अङ्गरेजी राज्यकी जड़ खोद डालनेके लिये वीर-वर तांतिया टोपी और महारानी लक्ष्मीबाईकी सहायता प्राप्तकर देश भरमें वह नवीन जागरण फैलाया, कि अङ्गरेजोंकी प्राय सौ वर्षोंमें बड़ी मुश्किलसे खड़ी की हुई शासन रूपी अट्टा-

नीके वणिकोंकी बन आयी। वे अब धीरे-धीरे कहीं कूटनीति और कहीं तलवारके जोरसे सारे भारतमें अपना प्रभाव फैलाने लगे। इनकी भाग्य लक्ष्मी सीधी थी, अत जिस भारतको पहले सैकड़ों विदेशी, लाख चेष्टाएँ करके भी, न पासके थे, उसे ही इन्होंने अनायास हस्तगत कर लिया।

भारतके हस्तगत होतेही सबसे पहले ये लोग यहाँके बढ़े चढ़े शिल्पको नेस्त नाबूद करनेमें लगे। भाँति भाँतिकी चालें चलकर यहाँके कारीगरोंके हाथ कटवा दिये गये। पाठक जानते ही हैं, कि किसी देशको कमजोर और मुर्दा बना डालनेका सबसे आसान तरीका उसके शिल्पको नष्ट कर डालनाही है। अगरेजोंने उक्त प्रकारसे भारतीय शिल्पको नष्ट कर बहुत कुछ सिद्धि पा ली और भारतके प्राय सभी प्रदेशोंमें विलायती वस्तुओंका उपयोग होने लगा। भारतके शिल्पको नष्ट कर इन्होंने यहाँकी कृषि,वाणिज्य और पोत-निर्माणकी कलापर छापा मारा। मनमाना लगान लगाकर कृषि, अगणित टैक्स बैठाकर व्यापार और द्रव्योंको नष्ट कर पोत कलाका नाश कर डाला गया। कृषक और कारीगर मजदूरी करनेके लिये बाध्य हुए और व्यापारियोंने दलाली द्वारा अपना उदर-पोषण करना शुरू कर दिया। उस समय जिस किसी देश हितैषी सज्जनने अगरेजोंके इन अत्याचारों के खिलाफ आवाज उठायी, उसीको फाँसीतक दे दी गयी। महाराज नन्दकुमार और राजा चेतसिंह, इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

भारतमें विद्रोह।

उक्त सारे काण्ड ईस्वी सन् १७५७ से लेकर १८४०तक होते रहे। इस बीचमें अगरेजोंने सारी प्रजाको निर्जीव और अपने हाथकी कठपुतली बना दिया। अधिकाश लोग नौकरियाँ करके और कितनेही अपने भाइयोंका गला कटवाकर उदर-पोषण करने लगे। इस प्रकार जब कुछ समय बीत गया और सभी लोग दासत्वकी कठोर शृङ्खलामें बँध गये, तब अङ्गरेजोंने और भी दिन दूने अत्याचार करने आरम्भ कर दिये। उन अत्याचारोंकी सीमा यहाँतक बढ़ गयी, कि भारतके चार करोड़ निवासी निरन्न और नग्न रहकर मौतके शिकार होने लगे।

इस करुण दृश्यको देख और न्यायका डङ्का पीटनेवाली ईष्ट-इण्डिया कम्पनीके अन्यायोंसे परेशान होकर महाराष्ट्रके एक वीर योद्धाने इनके विरुद्ध तलवार पकड़ी। इस वीरका नाम था—नानासाहब धुन्धुपन्त। नानासाहब विद्या, बुद्धि और पराक्रममें अतुलनीय थे। अङ्गरेज इतिहास लेखकोंने यद्यपि इनका चरित्र अति जघन्य रूपमें अंकित किया है, पर सच पूछिये, तो धुन्धुपन्त एक सच्चे स्वदेश सेवक थे।

नानासाहबने अङ्गरेजी राज्यकी जड़ खोद डालनेके लिये वीर-वर ताँतिया टोपी और महारानी लक्ष्मीबाईकी सहायता प्राप्तकर देश भरमें वह नवीन जागरण फैलाया, कि अङ्गरेजोंकी प्राय सौ वर्षोंमें बड़ी मुश्किलसे पड़ी की हुई शासन रूपी अट्टा-

लिकाकी नींव हिल उठी। सारे देशी सैनिकोंने नानासाहबका आधिपत्य स्वीकारकर अङ्गरेजी शासनको नेस्तनाबूद करना शुरू कर दिया। इस काण्डसे भारतमें कुछ समयके लिये अशान्तिकी भीषण अग्निप्रज्वलित हो उठी। किन्तु उस समय विधिका विधान अङ्गरेजोंके अनुकूल था, इसीसे नानासाहब सफल मनोरथ न हो सके। अङ्गरेजोंने सिक्खोंकी मदद लेकर बडी शीघ्रतासे उस विद्रोहका दमन कर दिया और जितने बलवाई थे, वे सब स्वदेश यज्ञकी वेदीपर बलि हो गये।

अब भारतमें फिर अङ्गरेजोंकी तूती बोलने लगी। पर कम्पनीका शासन अत्याचार पूर्ण सिद्ध हो जानेके कारण यहांसे उठा लिया गया और तबसे भारतकी शासन-डोर महारानी विक्टोरियाने अपने हाथोंमें ले ली।

जबतक महारानी विक्टोरिया जीवित रहीं, तबतक उन्होंने बडी योग्यतासे शासन किया और जहांतक हो सका, भारतको सदा प्रसन्न रखा।

इस प्रसन्नतामें भारतवासी फिर आलस्य निद्राकी गोदमें जा पडे और महारानीने राज सिंहासनपर पैर रखते समय जो मधुर घोषणा प्रचारित की थी, उसे सिद्ध या सत्य बनवानेकी उन्होंने तनिक भी चेष्टा नहीं की।

किन्तु तुम भलेही चेष्टा न करो, पर जिस समय परमात्मा किसी कार्य्यको करनेको मनमें ठान लेता है, उस समय उसका विरोधियोंके हाथोंसेही अनुष्ठान करा देता है।

राष्ट्रीय महासभा।

ईस्वी सन् १८८३ में भारतके तत्कालीन वाइसराय लार्ड डफरिनने अपने सलाहकार मिस्टर ह्यूम और भारतके कुछ विद्वान् पुरुषोंको एकत्रित कर उनके सामने एक ऐसी संस्थाके स्थापित होनेकी आवश्यकता दिखायी, जिसके द्वारा भारत सरकारको प्रतिवर्ष भारतवासियोंकी नवीन आकाङ्क्षाओंका पता लगता रहे। मिस्टर ह्यूम आदि विद्वानोंने लार्ड महोदयके उस परामर्शका अभिनन्दन किया और साल भरमेंही उद्योगसे भारतमें राष्ट्रीय महासभा या इण्डियन-नेशनल कांग्रेसकी प्रतिष्ठा हो गयी।

यदि सच पूछिये, तो इस राष्ट्रीय सभाके स्थापनमें भी भारत सरकारकी एक कूटनीति छिपी हुई थी। वह सोचती थी, कि यदि इस सभाको हम अपने हाथमें रख सकेंगे, तो आसानीसे, सदा सर्वदाके लिये, भारतवासियोंको अपने मायाजालमें फाँसे रहेंगे, किन्तु उस समय उन्होंने इस बातका स्वप्नमें भी ख्याल नहीं किया था, कि आगे चलकर यही सभा पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करनेका उद्योग करने लगेगी। अतः उक्त गुप्त उद्देश्यकी सिद्धिपर लक्ष्य रख, भारत-सरकारने सभाकी बागडोर ऐसे लोगोंके हाथमें देदी, जिनपर उसका पूरा पूरा प्रभाव था। तदनुसार प्राय पन्द्रह सालतक कांग्रेस बाजीगरके इशारेपर नाचनेवाली, केवल कुछ कालके लिये मनोरञ्जन करनेवाली, कठपुतलीकी भाँतिही चलती रही। उस समय-

तक कांग्रेसमें वेही लोग भाग लेते रहे, जो प्रत्यक्ष रूपसे भारतकी नौकरशाहीकी खुशामदें कर ऊँची-ऊँची नौकरियाँ या पदवियाँ पानेकी इच्छा रखते थे। इसीसे सन् १९०४ तक भारतके कुछ अँगरेजी जाननेवाले लोगोंके सिवा कांग्रेसका नाम सर्वसाधारणमें प्रचारित न होने पाया। साथही उस समय-तक कांग्रेससे धन-हानिके अतिरिक्त लाभ तो नाम-मात्रको भी न हुआ।

सन् १९०५में लार्ड कर्जनने अपने स्वेच्छाचारी शासनके आगे लोक-मतकी हत्या कर बंगभंग किया। इससे दासताकी चरम सीमातक पहुँचे हुए बंगाली बाबुओंके हृदयोंमें भारी चोट पहुँची और इसीसे उस समय उनमें विलक्षण जागृतिका सञ्चार हुआ।

लोगोंमें जागृतिका सचार होतेही कांग्रेसकी भी पोल खुल गयी। लोग एकस्वर होकर कांग्रेसकी कड़ी आलोचना करने लगे। इससे उसके सञ्चालकोंको कांग्रेसकी नैया डावाडोल होती दिखाई दी तथा अपने कलकको छिपानेके लिये उन्होंने अगले वर्ष सन १९०६में होनेवाले अधिवेशनका सभापति, स्वर्गीय दादाभाइ नौरोजीको चुन डाला।

दादाभाई नौरोजी सच्चे स्वदेश-भक्त थे। वे बगुलाभक्तोंकी भाँति "मुखमें राम बगलमें छूरी' वाली नीतिके घोर विरोधी थे। उनमें देशके लिये त्याग करनेका माद्दा था। वे देशको सदा-सर्वदा दासत्व जीवन व्यतीत करते देखना पसद नहीं

करते थे। इसीसे उन्होंने अपने कई मित्रोंकी सलाह लेकर काँग्रेसमें स्वराज्यकी दुन्दुभि बजा दी, अपने भाषणमें उन्होंने स्पष्ट रूपसे कह दिया, कि भारत-निवासीगण सुराज्य या सुशासनसेही सदा सन्तुष्ट नहीं रह सकते ; अब उन्हें स्वराज्य या प्रजासत्तात्मक शासनकी आवश्यकता है।

युगावतार तिलक।

काँग्रेसमें स्वराज्यकी दुन्दुभि बजतेही सारा राष्ट्र सोतेसे जाग पड़ा। विशेष कर, महाराष्ट्र और बंगाल स्वराज्य पानेके लिये अत्यन्त लालायित दिखने लगे। उक्त दोनों प्रदेशोंके स्वराज्यके लिये विशेष प्रयत्न करनेका एक कारण था। ऊपर हम दादाभाई नौरोजीको स्वराज्य-विषयक परामर्श देनेवाली जिस मित्र मण्डलीका उल्लेख कर चुके हैं, उसमें एक ऐसे महापुरुष मौजूद थे, जिनका अवतार देशको दासत्वके पशु-जीवनसे निकाल कर सच्चे मनुष्य जीवनमें लानेके लियेही हुआ था। वे थे,—तीस कोटि भारतवासियोंके हृदय सम्राट् लोक-मान्य बाल गंगाधर तिलक*। तिलक भगवान् उत्कट देश प्रेमी, दृढ प्रतिज्ञ, आत्म त्यागी और स्वावलम्बन प्रिय थे। कर्मोपासनाका उज्ज्वल आदर्श कृष्णके बाद यदि किसीमें देखा गया, तो वे लोकमान्य तिलकही थे। वर्तमान राष्ट्रीय जागृतिके जनक एकमात्र वही कहे जाते

*लोकमान्य तिलककी सम्पूर्ण और सचित्र जीवनी हमारे यहां तयार है। मूल्य १) सजिल्द १॥)

त्मा गाधीने, भारतके नेतृत्वकी बागडोर अपने हाथोंमें ले ली थी। सन् १९१९ ई० के रालेट-एक्टके प्रति सत्याग्रह-युद्धका छेडना हमारी इस बातका प्रमाण है, किन्तु सर्वाङ्गीण नेतृत्व महात्मा गान्धीके हाथोंमें उसी दिन आया, जिस दिन भारतको लोकमान्य तिलकने स्वर्ग प्रयाण किया।

महात्मा गाधीका जीवनाथ।

इस नेतृत्वको ग्रहण कर महात्मा गान्धीने भारतीयोंको केवल कुछही महीनोंमें उनके लक्ष्यके कितने समीप पहुँचा दिया, यह बात वर्त्तमान समयकी प्रगतिका इतिहास जाननेवाले भारतीयोंके सामने दुहरानेकी कुछ आवश्यकता नहीं। अतएव नीचे हम केवल महात्मा गाधीके व्यक्तित्व और उनके उपदेशोंकी महत्ताके सम्बन्धमें दो-चार शब्द लिखकर इस विषयको यही समाप्त करते हैं।

यह नि सकोच कहा जा सकता है, कि महात्मा गान्धीने भारतीयोंको पैरोंमें सदियोंसे पड़ी हुइ गुलामीकी बेडियोंसे मुक्त कर इस समय अपने अकित किये हुए स्वतन्त्रताके दिव्य आदर्श-जीवनमें पहुँचा दिया है।

भारतके अगरेजी-शासनके आजतकके इतिहासमें यह पहली ही घटना है, कि जिसकी बदौलत भारतकी दासत्व जीवी प्रजा अपने शासकोंके कुशासनसे परेशान हो, असहयोगका अस्त्र ग्रहण कर, स्वाधीनताके समर क्षेत्रमें आपडी हुई है। उसने बहुत शीघ्र विलायती सभ्यतापर विजय पायी है और आज उत्तरोत्तर

नितान्त विवश करनेवाले होते हैं। आपकी •
गजबका तेज भरा होता है। प्रत्येक शब्द मनुष्यको
सच्चे कर्म पथकी ओर निर्देश करता है। व्याख्या
भरमें धर्म और नीतिका उचित प्रकारसे समावेश होता है
उसके जितने अक्षर होते हैं, वे रत्नकी भाँति श्रोताओंका म
अपनी ओर आकर्षित करते हैं। जो असर बड़ेसे बड़े व्याख्या
ताओंकी रंग बिरंगी वाक्य-छटामयी वक्तृताएँ नहीं कर सकतीं
उससे कहीं अधिक प्रभाव आपके मुँहसे निकले चार स।
शब्द कर जाते हैं। इसका कारण यह है, कि नीति, धर्म, शिक्ष
और राजनीति—इन चारों विषयोंमें आपने जहाँतक अनुभव प्रा
किया है, वहींतक आप अपने व्याख्यानोंमें उनका समावेश करते
हैं। जो बात अनुभवमें नहीं आयी होती, उसे आप भूलक
भी अपने भाषणोंमें नहीं आने देते।

अनुभव दो प्रकारका होता है, एक शिक्षा लब्ध, दूसरा कर्म
लब्ध। प्रत्येक विषयके शिक्षा लब्ध अनुभवी व्यक्तियोंका देशमें
अभाव नहीं है। हमने उक्त कोटिके अनेक अनुभवी वक्ताओंको
इतना बढ़िया व्याख्यान देते देखा है, जो क्षणभरमें अपने श्रोता-
ओंको अनायास रुला या हँसा देते हैं, किन्तु उनकी यह शक्ति
श्रोताओंके हृदयोंमें चिरकालतक काम नहीं करती,—उसका
प्रभाव केवल सभा-स्थलतक ही रहता है। बादको उनके सारे
श्रोता चिकने घड़े सिद्ध हो जाते हैं, किन्तु कर्मलब्ध अनुभवी
के उत्तेजना मय व्याख्यान नहीं, केवल साधारण रीतिसे

मुंहसे निकले दो सीधे सादे शब्द ही सदा सर्वदाके लिये जनताको अपना अनुरक्त भक्त बना लेते हैं और अपने आदर्शके अनुसार ही श्रोताओंको जीवन व्यतीत करनेके लिये बाध्य कर देते हैं। महात्मा गांधीके उपदेशको, अबतकका फल देखते हुए, इसी अन्तिम कोटिमें रखा जा सकता है।

दक्षिण अफ्रिका, महात्मा गांधीके लिये एकदम अपरिचित देश था। आपने सत्य कामनासे प्रेरित होकर ही वहाँ अपनी साधनाका आरम्भ किया और उसकी भली भांति परीक्षा की। साधना अचूक सिद्ध हुई। इसीसे उन्होंने वहांके कष्ट-ग्रस्त भारतीयोंको अपने आदर्शके अनुसार चलनेका उपदेश दिया। उस उपदेशमें सत्यका समुचित समावेश था, अत एक ही आवाजमें सारे भारतीय आपका पथानुसरण करनेके लिये तत्पर हो गये और फलस्वरूप वर्षों बाद वे अन्यायका बहिष्कार कर वहांके अधिकारियोंको न्याय करनेके लिये विवश कर सके। यह था, आपके उपदेशोंका पहला और अद्भुत चमत्कार।

आपके उपदेशोंका दूसरा चमत्कार चम्पारनमें देख पड़ता है। महात्मा गांधीसे पहले चम्पारनके कृषकोंके कष्टोंको दूर करनेके लिये कितने ही उपदेष्टाओंने भाँति भाँतिके पथोंका निर्देश किया था, पर अनुभवहीनता या सत्यकी लगनका अभाव होनेके कारण उनमेंसे एक भी सफल न हो सका। किन्तु जब महात्मा गांधीने पहुँचकर वहांकी जनताको उपदेश द्वारा अव्यय पथ सत्याग्रहका उपदेश दिया, तभी सबका बेड़ा पार

हो गया। इसी प्रकार खेडेका सुधार और साम्राज्यकी सहायताके लिये भर्तीका कार्य्य—महात्मा गाधीके उपदेशोंके विशेष फल कहे जा सकते हैं।

यहाँपर सम्भवत पाठकगण एक प्रश्न कर सकते हैं। वह यह, कि जब महात्मा गाधीके उपदेश अपने श्रोताओंको अपने आदर्शोके अनुसार चलनेके लिये विवश कर अवश्यमेव उनका उद्धार करते हैं,—उनके श्रोताओंपर, एक बार उनका उपदेश सुन लेनेपर, दूसरे वक्ताओंकी वक्तृताओंका फिर रग नहीं चढता, तब पिछले दिन-रोलेट एक्टके विरुद्ध हुए सत्याग्रह युद्धमें भारतीयोंको असफलता क्यों मिली? इस प्रश्नके उत्तरमें निवेदन है, कि उक्त सत्याग्रह भारत-भरमें हुआ था और उस समय महात्मा गाधी भारत भरमें आजकलकी भाँति उपदेश देते नहीं फिरते थे। साथही उक्त अवसरपर भारत सरकारके पिट्ठुओंने थोडेसे अनजान, अशिक्षित भारतीय लोगोंको इस आन्दोलनको दबानेके लिये नितान्त अनुचित उपायोंसे उत्तेजित कर दिया था जिससे वे लोग महात्मा गाधीके अहिंसात्मक सत्याग्रहके उद्देश्योंको भूलकर उनके भडकानेसे भडक उठे थे और फलस्वरूप पञ्जाब आदि दो-एक स्थानोंमें खूनखराबी हो गयी। यदि महात्मा गाँधीको गिरफ्तार न कर पञ्जाब सरकार उन्हें पञ्जाबमें जाने देती, तो उक्त सत्याग्रहका सफल होना अनिवार्य्य था।

उक्त उत्तरकी पुष्टिके लिये दूर मत जाइये, वर्त्तमान असह

योग-आन्दोलनकी गतिकी ओर एक बार विचार पूर्ण दृष्टिसे देख लीजिये—बस, आपको हमारे कथनकी सत्यता मालूम हो जायेगी। इस आन्दोलनका प्रादुर्भाव हुए आज प्राय पौने दो वर्षका अर्सा बीतता है। इसकी गतिमें तीव्रताको आये भी पूरा एक साल हो गया, साथ ही इसका प्रसार भी भारतव्यापी और देशके सभी लोगोंमें है। भारतकी नौकर-शाहीने इसे नेस्तानाबूद करने अथवा जोरोंसे दमनास्त्रका प्रयोग करके असहयोगियोंको मिटा देनेके लिये भी कुछ उठा नहीं रखा तथापि अभीतक इसमें विफलताका भी कहीं चिह्न नहीं देख पड़ता, तिसपर सबसे बड़ी भयंकर बात यह हुई है, कि इस आन्दोलनका प्रचार होनेके साथ ही नौकर-शाही नेताओंके एक विभागको अपने चँगुलमें दबाये बैठी है। यदि सत्याग्रह आन्दोलनकी भाँति आज भी देश नरमदलकी सहानुभूति प्राप्त न किये होता, तो कांग्रेस अपने हाथों भारतका शासन कर रही होती, साथ ही नौकर-शाही और ऐंग्लो इण्डियन्स भी हमारे इशारेपर चलते होते।

असहयोगके इतने विकट प्रचारका क्या कारण है? स्वयं महात्माजीके उपदेशोंका प्रभाव। इस बार महात्माजीने भारतके प्राय समस्त नगरोंमें स्वयं जाकर जनताको असहयोगका अवलम्बन करनेका उपदेश दिया है और बराबर दे रहे हैं। इसीका यह फल है, कि भारत इस समय बहुत कुछ स्वतन्त्रताके समीप पहुँच गया है।

जिस प्रकार महात्माजीका व्यक्तित्व अति महान् है, उसी प्रकार उनके स्वर्णोपदेशोंका माहात्म्य भी अपूर्व है। इन अपूर्व महिमा युक्त उपदेशोंसे वर्त्तमान भारत और उसकी आनेवाली पीढ़ियोंका उसी प्रकार कल्याण साधन होता रहे, जिस प्रकार भगवान् कृष्णके दिव्य उपदेशोंसे उनके समकालीन भारत, परवर्त्ती भारत और वर्त्तमान भारतके साथ-ही साथ समस्त संसारका भला हो रहा है। भगवान् कृष्णके समस्त उ... संग्रह आजकल श्रीमद्भगवद्गीताके नामसे प्रसिद्ध है। ... भी महात्माजीके प्रधान प्रधान उपदेशोंके संग्रहको ... गीता" का नाम देकर प्रकाशित कर रहे हैं।

यह संग्रह कैसा हुआ है? जिस शैलीका अनुकरण कर हमने इस गीतामें महात्माजीके सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया है, वह कहांतक लोगोंको पसन्द आयेगी, यह हम नहीं कह सकते। इसका निर्णय-भार पाठकों पत्र सम्पादकों और सुयोग्य समालोचकोंके ऊपर है। हमारा तो सफल काम होना केवल इतनीही बातपर अवलम्बित है, कि जिस लक्ष्यको सामने रखकर हमने इस ग्रन्थको लिखा है, उससे पाठकोंको लाभ पहुँचे।

---

* * * *

पहला अध्याय

प्रस्तावना।

इस बीसवीं सदीका पहला चरण, आधेसे अधिक बीत गया है। यूरोपकी रण भूमिपर असंख्य मनुष्योंके रक्तकी गङ्गा सी बह रही है। महासमरके लिये इकट्ठे हुए सैनिक, अपने अपने घर लौट जानेकी शुभ घड़ीकी बड़ी उत्सुकताके साथ, प्रतीक्षा कर रहे हैं। अमेरिकाके राष्ट्र-पति विल्सनकी संसारमें दीर्घ-कालतक शान्ति बनी रखनेके लिये, राष्ट्र-संघ स्थापन करनेकी शुद्ध बुद्धिसे उत्पन्न हुई कल्पना, समस्त आबाल-वृद्धोंकी चर्चाका विषय हो रही है। राष्ट्रसंघके हाथोंसे पतित देशोंका मूलत उद्धार होगा, एवं स्वभाग्य निर्णयका अधिकार समस्त देशोंको देकर यह राष्ट्रसंघ उन्हें अधिक परिमाणमें स्वातन्त्र्य सुखका लाभ करायेगा, ऐसी आशाओंसे भारतवर्ष सरीखे बड़े-बड़े और पराधीन देश राष्ट्रसंघकी उद्देश्य पत्रिकाके प्रत्येक शब्दका अर्थ मनमाने ढगसे निकालनेमें मग्न हो रहे हैं। इस महा-समरमें भारतवर्षने ब्रिटिश साम्राज्यको जो बहुमूल्य सेवा की है, उसकी प्रशसामें साम्राज्यके बडे बडे अधिकारियों द्वारा गाये हुए आशा भरे मधुर रागोंको सुनकर हिन्दुस्थानके क्या गरम

गान्धी-गीता

जिस प्रकार महात्माजीका व्यक्तित्व अति महान् है, उसी प्रकार उनके स्वर्णोपदेशोंका माहात्म्य भी अपूर्व है। इन अपूर्व महिमा युक्त उपदेशोंसे वर्त्तमान भारत और उसकी आनेवाली पीढियोंका उसी प्रकार कल्याण साधन होता रहे, जिस प्रकार भगवान् कृष्णके दिव्य उपदेशोंसे उनके समकालीन भारत, परवर्त्ती भारत और वर्त्तमान भारतके साथ-ही-साथ समस्त संसारका भला हो रहा है। भगवान् कृष्णके समस्त उपदेशोंका संग्रह आजकल श्रीमद् भगवद् गीताके नामसे प्रसिद्ध है। हम भी महात्माजीके प्रधान प्रधान उपदेशोंके संग्रहको "गान्धी गीता" का नाम देकर प्रकाशित कर रहे हैं।

यह संग्रह कैसा हुआ है? जिस शैलीका अनुसरण हमने इस गीतामें महात्माजीके सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया है, वह कहांतक लोगोंको पसन्द आयेगी, यह हम नहीं कह सकते। इसका निर्णय-भार पाठकों पत्र सम्पादकों और सुयोग्य समालोचकोंके ऊपर है। हमारा तो सफल काम केवल इतनीही बातपर अवलम्बित है, कि जिस लक्ष्यको सामने रखकर हमने इस ग्रन्थको लिखा है, उससे पाठकोंको लाभ पहुंचे।

---

* * * *

पहला अध्याय

प्रस्तावना।

इस बीसवीं सदीका पहला चरण, आधेसे अधिक बीत गया है। यूरोपकी रण भूमिपर असंख्य मनुष्योंके रक्तकी गङ्गासी बह रही है। महासमरके लिये इकट्ठे हुए सैनिक, अपने अपने घर लौट जानेकी शुभ घडीकी बडी उत्सुकताके साथ, प्रतीक्षा कर रहे हैं। अमेरिकाके राष्ट्र-पति विल्सनकी संसारमें दीर्घ-कालतक शान्ति बनी रखनेके लिये, राष्ट्र संघ स्थापन करनेकी शुद्ध बुद्धिसे उत्पन्न हुई कल्पना, समस्त आबाल-वृद्धोंकी चर्चाका विषय हो रही है। राष्ट्रसंघके हाथोंसे पतित देशोंका मूलत उद्धार होगा, एव स्वभाग्य निर्णयका अधिकार समस्त देशोंको देकर यह राष्ट्रसंघ उन्हें अधिक परिमाणमें स्वातन्त्र्य सुखका लाभ करायेगा, ऐसी आशाओंसे भारतवर्ष सरीखे बडे-बडे और पराधीन देश राष्ट्रसंघकी उद्देश्य पत्रिकाके प्रत्येक शब्दका अर्थ मनमाने ढगसे निकालनेमें मग्न हो रहे हैं। इस महा-समरमें भारतवर्षने ब्रिटिश साम्राज्यकी जो बहुमूल्य सेवा की है उसकी प्रशंसामें साम्राज्यके बडे बडे अधिकारियों द्वारा गाये हुए आशा भरे मधुर रागोंको सुनकर हिन्दुस्थानके क्या मदन

और क्या नरम समस्त नेता इस बातका—बड़ी मोठी ~ ~ देख रहे हैं, कि अब हमारा भारत अति शीघ्र पूर्ण स्व पालेगा। हमलोग अपने पैंतीस वर्षके अनवरत परिश्रमका शीघ्रही प्राप्त कर लेंगे। भारत सचिव मिस्टर माण्टेगूने २० अगस्त १९१७ को पार्लामेण्टमें जो आश्वासन दिया था, उसने समस्त भारतीय शिक्षित प्रजाके अन्त करणको और भी प्रफुल्ल कर दिया है।

उत्सुकताके दिनोंमें भारतवर्षकी प्रजा, जिसकी चातककी भाँति बाट जोह रही थी, वह माण्टेगू-चेम्सफोर्ड-सुधार योजना एक दिन सहसा प्रकाशित हो गयी। उसने प्रकाशित होतेही भारतके अनेक देश-प्रेमी व्यक्तियोंके हृदयपर अमृत सिंचनके स्थानपर, बिना बादलोंके भीषण वज्राघात कर दिया।

द्वापर-युगमें जिस प्रकार आचार्य्य द्रोणने पुत्र अश्वत्थामा को मायका दूध माँगनेपर पानीमें आटा घोल और पिलाकर बहला दिया था, उसी प्रकार माण्टेगू और चेम्सफोर्डने भी अपनी थोथी सुधार योजना प्रकाशित कर भारतीय प्रजाको भुलानेकी चेष्टा की।

उक्त सुधार-योजनाने भारतको बेतरह निराशामें ढकेल दिया है। खुशामदी नरम नेतातक उसे देखकर मनही मन अत्यन्त क्षुब्ध हुए हैं एवं उसका दिखाऊ अभिनन्दन कर स्पष्ट शब्दोंमें कह रहे हैं, कि ब्रिटिश-शासकोंसे इससे अधिक पानेकी आशा नहीं। अतएव उक्त योजनाने वर्षोंसे पुष्ट हुई तीस करोड़

भारतवासियोंकी सारी आशाओंपर निराशाका पानी फेर दिया है। इतनेपर भी लार्ड सिडनहम जैसे भारतके शत्रु जगह बजगह सभाएं कर "हैं! हैं! क्या कर रहे हो?" कहकर *मिस्टर* माण्टेगूको सुधार न करनेकी सलाह दे रहे हैं। इन सब बातोंसे भारतीय और भी पस्तहिम्मत होचले हैं और "हा! अभागे हिन्दोस्तान! क्या तेरे भाग्यमें स्वाधीनताका सुख बदा ही नहीं" कहकर दु खावेगके उद्गार निकल रहे हैं। यह भाव साधारण व्यक्तियोंका नहीं, राष्ट्रकार्योंके लिये तन मन-धन अर्पण करनेको तयार हुए उत्साही गरम दलके नेताओंका भी यही हाल होरहा है।

इन्हीं निराशाके दिनोंमें एक दिन एक व्यक्ति हथेलीपर सिर रखे, अपने घरके दरवाजे परबैठा हुआ, कुछ सोच रहा था। मनमें भरी हुई उद्विग्नताके चिह्न उसके चेहरेपर स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहे थे। वह सोच रहा था,—"क्या भारतके भाग्यमें किसी समय स्वराज्य सुख भोगना लिखा ही नहीं? क्या यह कैनेडा और आष्ट्रेलिया जैसे देशोंसे भी गया बीता है!" इस प्रकार भारतके भवितव्यकी बातें सोच सोचकर उसके हृदयमें शूलसा बिंध रहा था। इसी समय अचानक महात्मा गान्धी वहाँ आ पहुँचे। महात्माजीने उस विचारमें तल्लीन हुए व्यक्तिको देख तथा उसके चेहरेपर झलकनेवाली निराशाकी छापसे उसके मनका भाव ताडकर कहा,—"मेरे प्यारे मित्र! आज तुम ऐसा मलिन मुख किये क्यों बैठे हो? तुम्हें क्या दुःख है? कौनसा कष्ट है,

बताओ तो ? यदि मेरे द्वारा वह दूर हो सके, तो मैं यथाशक्ति अवश्य उसके लिये चेष्टा करूँगा।"

महात्माजीके इन प्रेम और उत्साहभरे वाक्योंको सुनकर युवकके प्राणोंमें मानो अमृत-सञ्जीवनीका सञ्चार हो गया। उसने महात्माजीके चरणोंमें प्रणाम कर बड़े विनीत भावसे अपना दुखड़ा कह सुनाया।

युवक बोला,—"प्रभो! मैं अपने मनका दुःख क्या बताऊँ? संसारमें आजकल नवीन जागरण हो रहा है। रूस जर्मनी, आष्ट्रिया, बलकान, आदि देशोंकी प्रजा अपने अन्धकार पूर्ण दासतामय जीवनसे निकलकर स्वतन्त्रताके सुखमय प्रकाशमें आ रही है राज-तन्त्रका अन्त होकर सर्वत्र प्रजा-तन्त्रका स्थापन हो रहा है। ऐसे सौभाग्य पूर्ण समयमें एक मात्र भारतही ऐसा दुर्भाग्य-शील है, जिसका अनेक प्रयत्न करनेपर भी, प्रजा हितैषियोंके निर्वासन, कैद और प्राण दण्ड पानेपर भी, भाग्योदय नहीं होता! लोग कहते हैं, कि किसीके सब दिन एकसे नहीं बीतते, सदा अन्धकारके बाद प्रकाश होता है। पर सौ-पचास वर्षही नहीं, प्राय एक हजार वर्षसे इस देशका स्वातन्त्र्य-सूर्य डूब गया है तोभी फिर निकलनेका नाम नहीं लेता। यूरोपके अनेक देशोंका स्वातन्त्र्य सूर्य्य इतने समयमें कितनी बार डूबकर निकल आया; पर भारतमें युग-पर युग बीत जानेपर भी अमावस्याकी अँधियारी बनी ही हुई है। इस अन्धकार-पूर्णरात्रिका अन्त करनेके लिये, स्वातन्त्र्य-सूर्य्यको

गानेके लिये बाप्पारावल, राणा प्रताप, शिवाजी, नाना साहब धुंधुपन्त और महारानी लक्ष्मीबाई जैसे महावीरोंने आत्मबलि कर दी ; परन्तु परमात्माने उनकी चेष्टाओंकी ओर तनिक भी दृष्टिपात नहीं किया। गत ३०-३५ सालसे लोकमान्य तिलक जैसे महापुरुष इस देशको स्वतन्त्र बनानेकी चेष्टा कर रहे हैं, पर अबतक कुछ भी न हुआ। इस युद्धमें भारतने जिस निस्स्वार्थ भावसे साम्राज्यकी सेवा की और जैसी आशायें दी गयीं, उससे कुछ भरोसा हुआ था, परन्तु अब मालूम हुआ, कि वह कोरी मृग मरीचिकाही थी। नयी सुधार योजनाने भारतको स्पष्ट सूचना दे दी, कि भारत कभी स्वतन्त्र न होगा! कभी स्वतन्त्र न होगा!"

महात्माजीने उसकी बातें एकचित्त होकर बड़ी शान्तिके साथ सुनीं। इसके बाद थोड़ा मुस्कराते हुए बोले—"प्यारे भाई! उठो! तुम सरीखे उत्साही युवकोंका इस प्रकार हतोत्साह होना, शोभा नहीं देता! भाई! देशके उद्धारका सारा भार तो देशके युवकोंपरही है! यदि हमारी यही युवक मण्डली हतोत्साह होकर तुम्हारी भाँति हाथ पैर सिकोड़—मन मारकर निकम्मी हो बैठ रहेगी, तो भारतके भाग्योदयकी किससे आशा की जायेगी? देशोन्नतिके मार्गपर गुलाबकी पँखुरियाँ थोड़ेही बिछी रहती हैं? यह मार्ग अत्यन्तही विकट है। यह असीम कष्ट प्रद और और आगे बढ़नेकी चेष्टा करनेवालोंके मनको क्षण-क्षणमें हतोत्साह करनेवाला है। ऐसे कठिन मार्गको पारकर

हमारी स्वतंत्रता हमें वापिस दे देंगे ? यह सब जानते हैं, कि भारतीयोंमें शस्त्र-बलसे अँगरेजोंका मुकाबिला करनेकी शक्ति नहीं है। ऐसी अवस्थामें क्या और भी—कोई ऐसा बल है जिसके द्वारा भारत बिना रक्तपातकेही अपनी खोयी हुई स्वाधीनता फिरसे प्राप्त कर ले सकता है ?

महात्माजीने युवकके इस प्रश्नको सुनकर बड़ेही शान्तभाव से जो उपदेश दिया, वह अगले अध्यायमें लिखा गया है।



दूसरा अध्याय

सत्याग्रह।

महात्माजीने कहा,—"मेरे प्यारे बन्धु ! जिस बलकी खोज करनेमें तुम इतने व्यस्त हो रहे हो, उस बलको भारतवासी बड़ी आसानीसे प्राप्त कर सकते हैं। उस बलका नाम है,— सत्याग्रह। सत्याग्रह आत्माका बल है। इसीका दूसरा नाम आत्मिक बल है। इस बलका प्रयोग करनेके लिये अस्त्रों और शस्त्रोंसे सहायता लेनेकी तनिक भी आवश्यकता नहीं है। यह शस्त्र बल और अन्यान्य भौतिक शक्तियोंका विरोधी है। सत्याग्रह स्वतन्त्रता-प्राप्तिका एक धार्मिक साधन है। इसलिये धार्मिक वृत्तिवाले मनुष्य इसका ज्ञान पूर्वक उपयोग कर सकते हैं। प्रह्लाद, मीराबाई और सुधन्वा आदि महापुरुषोंने ये बल इसी बलके द्वारा अपने विरोधियोंपर विजय पायी थी। ये लोग शुद्ध सत्याग्रही थे। मोरक्कोकी लड़ाईके समय, वहाँके अरबोंपर फ्रेंचोंकी तोपें धड़-धड़ गोलाधारो कर रही थीं। अरब लोग अपने विश्वासके अनुसार केवल धर्मके लिये युद्ध कर रहे थे। वे प्राणार्पणके लिय तैयार होकर 'अल्लाहोअकबर'का जयघोष करते हुए तोपोंकी बाढ़के सामने चले आये। उन्होंने लड़ाई

न कर, केवल मर जानेकीही ठानी। उन आत्मवीर अरबोंको देखकर फ्रेञ्च गोलन्दाजोंने उनपर गोले बरसाना महापाप समझा और उन्होंने अपने सेनापतिकी आज्ञाका उल्लघन करते हुए हर्ष-नाद कर अपने टोप हवामें उछालते हुए उन अरबोंका धन्युमार से आलिंगन किया। यह सत्याग्रह और उसकी विजयका एक ताजा उदाहरण है। अरबोंने यह सत्याग्रह ज्ञान पूर्वक या समझ बूझकर नहीं किया था। वे अपने आवेशमें आकरही अपनेको बलिदान करनेके लिये तैयार हुए थे। साथही उनमें प्रेम-भावका सर्वथा अभाव था। वे द्वेषसे प्रेरित होकरही फ्रेञ्चों का सामना करनेके लिये तैयार हुए थे, किन्तु सच्चा सत्याग्रही किसीसे द्वेष नहीं करता। वह क्रोधके वशमें होकर मृत्युका आलिङ्गन नहीं करता, अपनी कमजोरीके कारण शत्रु या अत्याचारीके सामने मस्तक नहीं झुकाता, वरन् अपने त्यागमय गुणों की बदौलत घोर अन्याचारीको भी अपना अनुयायी बना लेता है। सत्याग्रही मनुष्यमें वीरता, क्षमा और दया आदि गुण अवश्य होने चाहिये।

- इमाम हुसेन और उनके साथियोंको, शत्रुओं द्वारा दासता स्वीकार करनेके लिये कहा गया था, किन्तु उन लोगोंने शत्रुओंको प्रबल देख कर भी इस अन्याय पूर्ण आज्ञाको अस्वीकार कर दिया; क्योंकि वे मनुष्य होकर मनुष्यकीही दासता करना अन्याय-समझते थे। उस समय उन्हें यह निश्चित रूपसे मालूम था, कि हमारे भाग्यमें मरनाही बदा है। तथापि इस पवित्र

प्रचारसे, कि अन्यायके अधीन होनेके कारण हमारे पुरुषार्थको कलंक लगेगा, हम धर्म भ्रष्ट होंगे, उन्होंने अपनी आत्माकी स्वतंत्रताकी हत्या न की और हँसते हँसते मृत्युका आलिंगन कर लिया। इमाम हुसेनने अपने पुत्र-पौत्रोंका मारा जाना स्वीकार किया, पर वे लाख-लाख प्रलोभन और भयके कारणोंके सामने होते हुए भी अन्याय पूर्ण आज्ञा अधीन नहीं हुए।

मेरा विश्वास है, कि मुसल्मान-धर्मकी उन्नति मुसलमानोंकी तलवारोंसे नहीं वरन् मुसलमान फकीरोंकी आत्मबलिसे ही हुई। तलवारका वार सहनेमेंही बहादुरी है, तलवार चलानेमें तनिक भी बहादुरी नहीं। मारनेवालेकी यदि भूल होगी, तो इसका स्मरण उसे सदा पश्चात्तापकी आगमें जलाता रहेगा, कि मैंने वृथाही हत्याका पाप अपने सिरपर लिया, परन्तु यदि मरनेवालेने भूलसेही मृत्युको आलिङ्गन किया हो, तो भी उसकी विजय है। सत्याग्रह अहिंसासे भरा हुआ है, इसलिये वह सदा सर्वदा और सर्वत्र धर्म तथा कर्त्तव्य है। शस्त्र बल हिंसात्मक है, इस लिये वह सभी धर्मोंमें निन्दनीय समझा गया है। शस्त्र बलके हिमायती भी उसके प्रयोगकी बहुत कुछ सीमा निर्द्धारित करते हैं। लेकिन सत्याग्रहके लिये कोई सीमा या मर्यादा नियत नहीं है यदि इसमें किसी बातकी मर्यादा या सीमा की गयी है, तो केवल सत्याग्रहीकी तपश्चर्या अर्थात् दुःख सहन करनेकी शक्ति की।

यह स्पष्ट है, कि सत्याग्रहके वैध होने अथवा न होनेका

साथही स्वदेशी व्रतका व्रती होनेके कारण वह विदेश जात वस्तुओंका उपयोग करना भी पाप समझता है। वह केवल ईश्वर से डरता है, इसलिये दूसरी कोई प्रबल शक्ति उसे भयभीत नहीं कर सकती। सरकारके अत्याचारोंसे डरकर वह अपने कर्त्तव्यों का परित्याग नहीं करता। निरन्तर दासता भोग करते रहना, एक असह्य दुःख है। वीर युवक! शायद तुम इसीलिये उसका योग्य प्रतिकार ढूँढ रहे हो। परन्तु अब सरकारसे अनुनय विनय करनेसे हमारा काम न चलेगा, अतः इस असह्य दुःख की एकमात्र औषधि सत्याग्रह है। यदि तुम्हें अथवा भारत वर्षको यह दुःख असह्य है, तो तुम इसी समय अपना तन मन धन सब देशको सौंपकर सत्याग्रहका आरम्भ कर दो। इससे सरकारको हमारी वेदनाका पता लगेगा—वह हमारे अभावोंको अनुभव करेगी। मेरा दृढ़ विश्वास है, कि इस प्रकारके महा त्यागके सामने प्रबल प्रतापी चक्रवर्त्तीकी भी शक्तिको हार मानना पड़ेगी। तुम निश्चय समझो, कि वास्तवमे इसी उपा[illegible] उद्धार होगा।"

तीसरा अध्याय

इतिहास और सत्याग्रह।

पाठकने पूछा,—"महात्मन्! आप जिसे सत्याग्रह अथवा आत्मबल कहते हैं,क्या उसका कोई ऐतिहासिक उलम्ब भी है? क्योंकि अबतक ऐसा एक भी राष्ट्र नहीं देखा या, जिसने आत्मबल या सत्याग्रह द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त की हो।"

महात्माजीने कहा,—"प्रिय मित्र! क्या तुमने कभी महा कवि तुलसीदासके इस वाक्यको नहीं सुना, कि—

"दया धर्मको मूल है पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छोड़िये, जबलौं घटमें प्राण॥"

इस वाक्यको मैं शास्त्रके वचनसे कम नहीं मानता। इसपर रा उतनाही विश्वास है, जितना दो और दोके चार होनेपर। या बलही आत्म-बल है और आत्म-बलही सत्याग्रह है। इस लकी सिद्धिके प्रमाण पग पगपर मिलते हैं। यदि यह बल न ोता, तो पृथ्वी कभीकी रसातल पहुँच गयी होती, परन्तु तुम्हें तिहासिक प्रमाण दरकार है, अतएव पहले यह विचारना ाहिये, कि इतिहास किसे कहते हैं? इतिहास शब्दका अर्थ 'ऐसा हुआ।' यही अर्थ ग्रहण करनेसे बहुतसे दृष्टान्त

दिये जा सकते हैं। जिस अङ्गरेजी शब्दका अर्थ हमारा भार
तीय भाषामें 'इतिहास' किया जाता है और जिस शब्दका अर्थ
'बादशाहोंकी तवारीख' है, इस अर्थको ग्रहण करनेसे अवश्य ही
इसमें सत्याग्रहका एक भी दृष्टान्त नहीं मिल सकता, क्योंकि
जस्तेकी खानमें चांदी कैसे मिल सकेगी ? हिस्ट्रीमें संसारके
कोलाहलकी कहानी भी मिलेगी। इसीसे यूरोपियनोंमें एक
कहावत प्रसिद्ध है, कि जो राष्ट्र हिस्ट्री अर्थात् कोलाहल नहीं रखता,
वही सुखी है। राजा लोग कैसी चालें चलते हैं, किस प्रकार
हत्याएं करते हैं, किस प्रकार शत्रुताको अपनाये रहते हैं, ऐसी ही
ऐसी बातोंका हिस्ट्रीमें समावेश रहता है। यदि यही इतिहास
होता, यदि विश्वमें केवल ऐसी ही घटनाएं हुआ करतीं,
कभीका नष्ट हो गया होता। यदि जगत्की कथा युद्धसेही आरम्भ
हुई होती, तो आज एक भी मनुष्य जीवित नहीं रह गया होता
क्योंकि जो राष्ट्र युद्धकी बलि हुआ, उसकी यही दशा हुई।
इतिहास कहता है, कि आष्ट्रेलियामें वहांके आदि निवासी
शियोंकी हत्या की गयी। आष्ट्रेलियाके गोरोंने उनमेंसे
एकही दोको जिन्दा छोड़ा हो ! जिनकी जड़ बुनियाद तक
रहने दी गयी, वे कदापि सत्याग्रही नहीं थे। उन वादि
जो बचे होंगे, वे देखेंगे, कि इन गोरोंकी भी यही दशा होनेवा
है। जो तलवार पकड़ता है, उसकी मृत्यु एक दिन तलवारसेही
होती है। कहावत भी है, कि तैरनेवाला पानीमेंही डूबकर
मरता है।

विश्वमें आज अगणित मनुष्य विद्यमान हैं। इसीसे जानता है, कि संसारका आधार शस्त्र बल नहीं है। उसका सच्चा आधार दया अथवा आत्म बलही है। इसका मुख्य प्रमाण यही है, कि असंख्य लडाइयां होनेपर भी संसार अबतक स्थिर है। अतएव प्रमाणित हुआ कि युद्ध बलके अतिरिक्त उसका कोई और भी आधार अवश्य है।

हजारों लाखों मनुष्य प्रेमके आधीन, होकर अपना जीवन सुख पूर्वक बिताते हैं। करोडों कुटुम्बोंके क्लेश उनके प्रेम-समुद्रमें लीन होते हैं। सैकडों राष्ट्र भाई भाईकी तरह मिलकर रहते हैं। हिस्ट्री इन बातोंका उल्लेख न तो करती है, न कर सकती है। जब दया, प्रेम अथवा सत्यका प्रवाह थमता है,—उनमें बाधा पडती है —तभी उस स्थितिका इतिहासमें उल्लेख किया जाता है। एक कुटुम्बके दो भाइयोंमें झगडा हुआ, एकने दूसरेके प्रति सत्याग्रह किया, फलत दोनों फिर एकताके बंधन में बँध गये। इस घटनाको इतिहासमें कौन दर्ज करने आता है? हां, यदि दोनों भाइयोंमें वकीलोंकी मददसे अथवा ऐसेही किसी और कारणसे बैर भाव बढ जाये, और शस्त्र उठाने अथवा अदालत जानेकी नौबत आ पहुँचे, तो उनके नाम अवश्यही समाचार पत्रोंमें छपेंगे, पास-पडोस वालोंके कानोंतक पहुचेंगे और सम्भवत इतिहासमें भी लिखे जायेंगे। जो बात कुटुम्ब और समुदायकी है, वही राष्ट्रकी भी है। यह माननेका कोई भी कारण नहीं देख पडता, कि कुटुम्बके लिये एक नियम है

और राष्ट्रके लिये दूसरा नियम है। हिस्ट्री अस्वभाविक बातोंका उल्लेख करती है। सत्याग्रह स्वाभाविक है, इससे उसका उल्लेख उसमें होही नहीं सकता।"

युवकने पूछा,—"महाराज! कानूनोंके प्रति सत्याग्रहका किस प्रकार प्रयोग करना चाहिये?"

महात्मा गान्धी बोले,—"देखो, मैं कह चुका हूँ, कि सत्याग्रह युद्ध बलका विरोधी है। किसी भी बुरे कर्मका प्रतिरोध दो प्रकारसे होता है, एक शस्त्र अथवा शारीरिक बलसे, दूसरा आत्म बलसे। यदि मुझे कोई काम पसन्द न पड़े और मैं उसे न करूँ, तो यह न करना ही आत्म-बल द्वारा प्रतिरोध करना कहा जायेगा। प्रमाणके लिये मैं एक दृष्टान्त देता हूँ। मान लो, कि सरकारने भारत-रक्षा-कानूनकी भाँति कोई दूषित कानून बनाकर मुझे या अपनी प्रजाको उसका पालन करना आवश्यककर दिया, किन्तु उक्त कानून मेरी दृष्टिमें अन्याय पूर्ण है। मैं उसका पालन करना नहीं चाहता। ऐसी अवस्थामें, यदि मैं उसे रद्द करानेके लिये कानूनके निर्माताओंपर, हथियार लेकर हमला करूँ, तो मेरा यह काम शारीरिक बलका प्रयोग कहलायेगा और सत्याग्रह द्वारा उक्त कानूनका प्रतिरोध करनेके लिये मेरे लिये यह आवश्यक होगा, कि मैं उस कानूनको न मानूँ तथा उसके दण्ड स्वरूप कारावास या सरकार जैसी कुछ व्यवस्था करे, उसे सहर्ष भोगनेके लिये तैयार हो जाऊँ। यह आत्म भोग कहा जाता है।

"आत्म भोगका प्रयोग पर भोगकी अपेक्षा सरस है। इसमें अपनी सारी पिछली भूलोंका प्रायश्चित्त होजाता है। मनमें असाधारण बलका संचार हो जाता है। फिर इस असाधारण बलका सामना संसारकी कोई भी कानूनी शक्ति नहीं कर सकती। तुम यदि कभी अनुचित कानूनोंको रद्द करना चाहो, तो और किसी प्रकारके बलका आश्रय न लेकर इसी -आत्मबल द्वारा उन्हें रद्द करानेकी चेष्टा करो।"

युवकने पूछा,—"महाराज! कानूनके प्रति सत्याग्रह प्रयोग करना, तो एक प्रकारसे कानूनोंकी अवज्ञा कहलायेगी। संसारमें यह बात चिरकालसे प्रसिद्ध है, कि भारत-वासी सदासे राज नियमोंका पालन करते आये हैं। इस अवस्थामें कानूनोंके प्रति सत्याग्रह प्रयोग करना, क्या हमारे लिये न्याय संगत होगा?"

महात्माजीने कहा,—"भाई! भारतकी प्रजा राजनियमोंका पालन करनेवाली है—इसका वास्तविक अर्थ यह है, कि यह सत्य-प्रिय प्रजा है। यदि हमें कोई कानून पसन्द नहीं आया, तो हम कुछ उसके बनानेवालेका सिर नहीं तोडते। हमतो केवल उसका पालन करनेसे इन्कार करते हैं। हम सरकारके सारे कानूनों-, को मानते हैं, यह तो थोडेसे खुशामदी लोगोंकी आवाज है अन्यथा आजकल भले-बुरे सभी कानूनोंका माननेवाले तो पढे-लिखे व्यक्तियोंमें दो तीन निकलेंगे। पहले भी कभी ऐसे व्यक्ति नहीं देखे गये थे। फिर भले बुरे सभी कानूनोंको सिर झुका-कर मान लेना तो सरासर धर्म,न्याय और मर्यादाके विरुद्ध है।

पहले भारतके शासक लोग, कभी कोई ऐसा कानून नहीं बनाते थे, जिससे धर्म, मर्य्यादा और न्यायकी सीमा नष्ट होती हो। यह बात तो हम इस अङ्गरेजी राज्यमेंही देख रहे हैं। पर इसमें शासकोंकाही क्या दोष? हमलोग सदियोंसे गुलामी करते आते हैं। दूसरे देशोंके लोगोंने हमारा नामही गुलाम रख दिया, यह देखकर भी जब हमारी आँखें नहीं खुलतीं और हम आँखें मीचे, 'जी-हुजूर' कहकर अपने शासकोंकी सभीबातें, सारेही कानून, माननेके लिये तैयार हो रहे हैं, तब इन न्याय-धर्म-विरुद्ध कानूनोंके बननेका एकमात्र कारण हमारे सिवा और कौन है?

सत्यग्राही पुरुषोंका ऐसा अध पतन त्रिकालमें भी नहीं हो सकता। यदि आज सरकार कोई ऐसा कानून बना दे, कि भारतकी प्रजा अङ्गरेजी दरबारोंमें आकर नङ्गी हो नाचा करे, अङ्गरेज प्रभुओंको देखतेही नाक रगड़े, पेटके बल चले, तो ऐसी अवस्थामें एक सच्चा सत्याग्रही ऐसी सरकारके प्रति आँख उठा कर भी देखना न चाहेगा और तत्काल उक्त कानूनको सत्याग्रह द्वारा नष्ट कर देनेकी चेष्टा करेगा। जो मनुष्य आत्म विश्वासी है, जिसे ईश्वरको छोड़-संसारकी किसी भी शक्तिका भय नहीं, वह ईश्वरके कानूनोंके सिवा मनुष्यके बनाये हुए कानूनोंको कभी नहीं मान सकता। जो लोग एक बार इस बातका प्रत्यक्ष अनुभव कर लेते हैं, कि अन्याय युक्त कानूनोंका पालन करना एकदम 'नामर्दी' है, उन्हें फिर संसारका भारीसे भारी अत्याचार भी अपने बन्धनमें नहीं बांध सकता। शासक लोग हमारे शरी

केही मालिक हैं, उसे वे चाहे, तो कैद करें, देश निकाला या फाँसीपर लटकायें, पर हमारे मन, इच्छा और आत्मायें दा सर्वदा आकाशमें उड़नेवाले पक्षीकी तरह स्वाधीन और वतन्त्र हैं, उनका नाश तो तीखेसे तीखे बाण और भारीसे ारी तोपें भी नहीं कर सकतीं।

सच जान लो, कि जबतक तुम लोग सरकारके गैर कानूनी ानूनोंका मान करते रहोगे, तबतक तुम गुलामीकी बेड़ियां नहीं ोड़ सकते स्वाधीनता या स्वतन्त्रता उसी दिन मिलेगी, जिस दिन तुम शुद्ध सत्याग्रही बनकर ऐसे अन्याय मूलक कानूनोंका हिष्कार करोगे।"

युवकने पूछा,—"महाराज! क्या समस्त भारतीय प्रजा सत्याग्रही बन सकती है? सत्याग्रही बननेके लिये, किसी कारकी परीक्षा तो नहीं देनी पड़ती?"

महात्माजीने कहा,—"तुम्हारा प्रश्न उस बातकी मीमांसा चाहता है, कि सत्याग्रही कौन हो सकता है? अच्छा, सुनो। सत्याग्रह शब्दके अर्थपर विचार करते समय जो बात सबसे पहले ध्यानमें आयेगी, वह यह है, कि लड़नेवालेमें सत्यका आग्रह— सत्यका बल—होना चाहिये। अर्थात् उसे केवल सत्यकाही सहारा लेना चाहिये। एक साथ दो नावोंपर पैर न रखना चाहिये क्योंकि ऐसा करनेवाला बीचमेंही नष्ट हो जाता है। शारीरिक बलके न होनेपर सत्याग्रही बननेका विचार बिल्कुल खोटा विचार है। इस विचारकी सृष्टि लोगोंमें Passive Resistance

शब्दकी बदौलत होती है। इस शब्दका भाव है, कि जिस समय तुम शारीरिक बलका प्रयोग न कर सको, उस समय निष्क्रियबल द्वारा शत्रुका प्रतिरोध करो। सच पूछिये, तो सत्याग्रही बननेवाले मनुष्यमें रणांगणमें लडनेवाले योद्धासे भी अधिक शौर्य्यका होना आवश्यक है, क्योंकि शस्त्र-वीरका शौर्य तात्कालिक स्फूर्त्तिसे उत्पन्न होता है, परन्तु सत्याग्रही वारको निरन्तर दुःख सहनेके लिये तैयार रहना पडता है। उसे आठों पहर ऐसा विकट युद्ध करना पडता है, कि जिसका सम्बन्ध केवल बाह्य जगत्सेही नहीं, बल्कि भीतरी शत्रुओंसे भी है। सत्याग्रह शरीर-बलकी अपेक्षा अधिक तेजस्वी है। उसके सामने शरीर-बल तृणके समान तुच्छ है। शरीर बलमें अपने शरीरकी परवा न करते हुए रणमें जूझना मुख्य बात है। यह सच है, कि युद्ध करनेवालोंमें भय नहीं रहता, पर सत्याग्रही अपने शरीरको कोई चीज ही नहीं समझता, उसके मनमें संसारकी किसी शक्तिका भय प्रवेश नहीं कर पाता, इसलिये वह भौतिक ... नहीं ग्रहण करता और मृत्युसे निडर होकर मरते दमतक लड़ता रहता है। सत्याग्रहीमें शरीर-बलसे लड़ने वालेकी अपेक्षा अधिक धैर्य्य होना चाहिये। इस प्रकार सत्याग्रहीको सत्यकीही ... करना और सत्यपरही निष्ठा रखनी चाहिये, सम्पत्तिके सम्बन्धमें उसे उदासीन रहना चाहिये। सम्पत्ति और सत्यमें सदा ... बन रही है और रहेगी। इसका यह मतलब नहीं है, ... ग्रहीके पास धन रही नहीं सकता।

ीं हो सकता। सत्यका आचरण करते हुए, यदि धन रह ये, तो ठीकही है; अन्यथा अपने हाथका मैल समझकर उसे क देनेमें उसे जरा भी कष्ट न होगा। जिसने ऐसा निश्चय न कया हो, वह सत्याग्रही नहीं हो सकता। फिर जिस राजा ा सरकारके साथ सत्याग्रह करना पड़े, उसके देशमें, सत्याग्रही कके पास धन-सम्पत्ति रह जाना भी बड़ा ही कठिन है। ाका ज़ोर व्यक्तिपर नहीं चलता, उसके माल असबाबपर ता है। माल असबाब लुटवा लेने अथवा शारीरिक क्लेश की धमकी देकरही राजा अपने मनोनुकूल काम कराता है। से अत्याचारीके राज्यमें बहुधा उसी मनुष्यके पास धन रह कता है, जिससे उस राजाको अत्याचार करनेमें सहायता लती है, पर अत्याचारमें सहायक होना सत्याग्रहीके लिये सम्भव हीं हो सकता। ऐसी अवस्थामें उसे दरिद्रतामेंही सम्पन्नता ान लेनी चाहिये।

इस सम्बन्धमें एक और बात विचारणीय है। शरीर बलका योग करनेमें अनेक त्याग करने पड़ते हैं—भूख प्यास, सरदी-रमी सहनी पड़ती है। कुटुम्बकी माया त्यागनी पड़ती है। पये पैसेसे हाथ धोना पड़ता है। अफ्रिकाके बोअर लोगोंने यह सब कुछ किया था। शरीर-बलके भरोसे उनके किये हुए आ ग्रह और नि शस्त्र आग्रह या सत्याग्रहमें इतनाही अन्तर है, कि उनकी जय अनिश्चित होती है। इसके अलावा शरीर-बलने उन्हें गर्वित कर दिया था। आधी विजय मिलतेही उन्हें दिशा-भ्रम होने

युद्ध किया था, इसीसे वे अपनेही लोगोंपर अत्याचार करने लगे किन्तु पूर्ण सत्याग्रहीकी जय निश्चित है और उस जयसे दोनोंही पक्षोंका हित होता है। सत्याग्रही कभी सत्यको नहीं छोड़ सकता, अतएव उससे अत्याचार होही नहीं सकता।

सत्याग्रहीको परिवारकी माया त्यागनी पड़ती है। निःसन्देह यह बड़ा कठिन कार्य्य है; पर 'सत्याग्रह' का तो नामही तलवार की तेज धार है। हाँ, अन्तमें इससे सब परिवारवालोंका कल्याणही होता है। जहाँ एक बार लोगोंपर 'सत्याग्रह' का उन्माद सवार हुआ, वहाँ फिर अन्य बातोंकी इच्छा नहीं रह जाती। कष्ट सहन करते समय सत्याग्रहीके मनमें कुटुम्बियोंकी भावी स्थितिके सम्बन्धमें शङ्का या भय न होना चाहिये। जिसने दाँत दिये हैं, वह खानेको भी अवश्य देगा। जो साँप, बीछू बाघ, भेड़िये आदि भयङ्कर जीवोंको भोजन देता है, वह मनुष्य जातिको कब भूल सकता है? हमारी दिन रातकी इतनी हाय-हाय पावभर चाँवलों या आधा सेर बाजरेके लिये नहीं, किन्तु मीठे खट्टे अनेक प्रकारके खाद्योंके लिये है। सरदीसे बचने योग्य मोटे झोटे कपड़ेके लिये नहीं, किन्तु मखमल और कमखाबके लिये है। ये शौक या आदतें छोड़ देनेपर हमें कुटुम्बके लिये बहुत ही थोड़ी चिन्ता करनी पड़ेगी।

इस प्रकारका सत्याग्रही कौन हो सकता है? इस प्रश्नकी मीमांसा यह है, कि सत्याग्रही वही हो सकता है, जिसकी धर्ममें

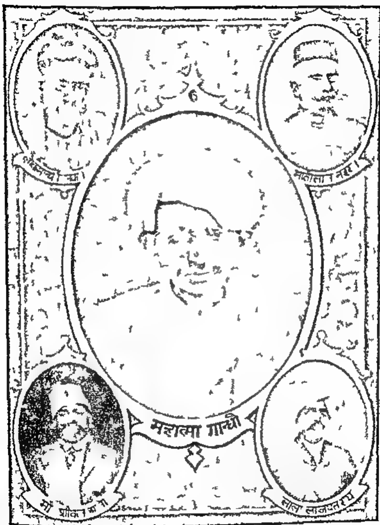
सच्ची निष्ठा हो। 'मुखमें राम बगलमें छुरी' को सच्ची निष्ठा नहीं कहते, धर्मकी ओटमें अधर्म करना कभी अच्छा नहीं है। जो व्यक्ति धर्मका सच्चा पालन करनेवाला होगा, वही सत्याग्रही हो सकता है। जिसका ईश्वरके सिवा और कोई अवलम्ब नहीं, वह जानताही नहीं, कि संसारमें पराजय नामकी भी कोई चीज है। लोगोंके पराजित कहनेसे न वह पराजित होता है, न विजयी कहनेसे विजय, उसकी विजयका रहस्य कोई विरलाही जानता है। यही सत्याग्रहका सच्चा स्वरूप है। हम-लोगोंने दक्षिण-अफ्रिकामें इसका कुछ अशोंमें पालन किया था। उतनेसेही इसके अमूल्य रसका स्वाद हमें मिलगया था। सारांश यह, कि जिसने सत्याग्रहके लिये सत्याग्रहका अवलम्बन किया, उसने मानों सब कुछ प्राप्त कर लिया, क्योंकि उसके पास सन्तोष है। सन्तोषही सुख है। अन्यथा सुख किसने पाया है? ससारके सारे सुख मृग तृष्णाके समान हैं। आप ज्यों-ज्यों उनके निकट जानेका उद्योग कीजियेगा, त्यों-त्यों वे और भी दूर होते जायेंगे। मनमें ऐसा दृढ विचार करनेसेही समस्त भारत वासी सत्याग्रही बन सकते हैं। यह भारतमें अत्युपयोगी सिद्ध होगा। इसका ग्रहण करनेमें किसी प्रकारकी परीक्षा देनेकी आवश्यकता नहीं, केवल इसके शुद्ध स्वरूपको जान लेने, ससारके सभी दुर्व्यसनोंसे दूर रहने, मनमें दृढता रखने तथा अभिमान और असत्यका त्याग कर देनेकी अवश्यकता है। जो इन सब बातोंमेंसे एकका भी पालक नहीं है, वह कभी सत्याग्रही नहीं हो सकता।"

चौथा अध्याय

अहिंसा।

अर्जुनने पूछा,—"महाराज! आपके अबतकके उपदेशोंका यही सार निकला कि भारतका उद्धार सत्याग्रहसे ही होगा, एतएव भारतवासीको अहिंसा-मूलक सत्याग्रही बनना चाहिये। परन्तु महात्मन्! एक बाततो बतलाइये,—अहिंसा अच्छी चीज है, यह मैं मानता हू, किन्तु मनुष्योंको जीवन निर्वाह करनेके लिये भी कभी-कभी आत्मरक्षाके निमित्त अहिंसासे भिन्न मार्गका अवलम्बन करनेकी आवश्यकता होती है, सबलोंके आक्रमणोंसे दुर्बलोंकी रक्षा करने और चोरों, लुटेरों, अत्याचारियों, बदमाशों तथा स्त्रियोंका सतीत्व नष्ट करनेवालोंको अन्याय-अत्याचारसे रोकनेके लिये शस्त्र ग्रहण करनाही पड़ता है। आपने शायद उक्त उपदेश देते समय अपनी दृष्टि इस ओर नहीं रखी, कि मनुष्यत्वके लिये यह बात अत्यन्त आवश्यक है, कि उचित क्रोध तथा उसके द्वारा जो भय होता है, वह भयको उत्पन्न करके दुष्टोंको दुष्टता करनेसे रोकना भी धर्म है। शायद आपने उक्त उपदेश देते समय इस सत्य-सिद्धान्तको मान देना जरूरी नहीं समझा, कि जो व्यक्ति किसी प्रकारका अन्याय

गान्धी-गीता



भारत पञ्चरत्न।

Burman Press Calcutta

-या अत्याचार सहन करता है और उसको रोकनेके लिये शारीरिक बल द्वारा चेष्टा नहीं करता, वह एक प्रकारसे उन बुरे कामोंका सहायक समझा जाता है। यह मैंने माना, कि आप सत्याग्रह द्वारा उसका विरोध कर सकते हैं, पर जिनमें सत्याग्रह करनेकी शक्ति नहीं है और जो अत्याचारीका अत्याचार सहनेके लिये बाध्य किये जा रहे हैं, उन्हें क्या शारीरिक बल द्वारा उसका विरोध न करना चाहिये? उदाहरण-स्वरूप मान लीजिये, कि कोई दुष्ट हमारी कन्यापर 'बलात्कार' करनेके लिये आक्रमण करता है, उस समय यदि हम उस आक्रमण कारीके आक्रमणके सामने जाकर न खड़े हो जायेंगे, तो क्या वह अपनी पाप लालसाको चरितार्थ न कर लेगा? क्या उस समय भी अहिंसा पूर्वक सत्याग्रह ग्रहणकर शारीरिक बलसे काम नहीं लेना चाहिये?"

महात्मा गान्धी,—"अहिंसाके सम्बन्धमें मैंने जो कुछ कहा है, उसपर यदि तुम भले प्रकारसे विचार कर लेते, तो इस प्रकारका प्रश्न नहीं करते। देखो, हमारे शास्त्रोंमें लिखा हुआ है, कि जो मनुष्य अहिंसा-धर्मका पूरा पूरा पालन करता है, उसके चरणोंपर एक दिन सारा संसार आ गिरता है। आस पासके जीवोंपर उसका ऐसा प्रभाव पड़ता है, कि साँप और दूसरे जहरीले जानवर भी उसे कोई हानि नहीं पहुँचाते। कहते हैं, कि ऐसिसीके सेण्ट-फ्रान्सिसको भी इस बातका अनुभव हुआ था।

"अहिंसा धर्म जिस रूपमें कामोंका वर्जन करता है, उस रूप-

है। सच्चा वीर वही है, जो मरना जानता हो और गोलियोंकी वर्षामें भी अपने स्थानपर दृढता पूर्वक खडा रहे। राजा अम्बरीष ऐसे ही वीर थे। वे अपने स्थानपर बराबर खडे रहे और यद्यपि दुर्वासाने जो कुछ बुरे-से बुरे करना चाहा, वह सब कुछ कर डाला, तथापि उन्होंने उनपर उँगलीतक न उठायी। जो 'मूर' लोग 'अल्ला-अल्ला' कहते हुए फ्रान्सीसी सेनाकी तोपोंके सामने जा खडे हुए थे, उन्होंने भी इसी प्रकारका साहस दिखाया था। इन दोनोंमें अन्तर केवल यही था, कि मूरलोगोंका साहस निराशा जन्य था और अम्बरीपका प्रेम-जन्य, फिर भी मूरलोगोंने मरनेके लिये जो साहस दिखाया, उसने गोलन्दाजोंको परास्त कर दिया। वे सब मूरोंके ऐसा त्याग दिखाते ही तोपोंसे हटकर दूर खडे हो गये और उन्होंने शत्रुओंका मित्रोंके समान स्वागत किया। दक्षिण-अफ्रिकाके हजारों सत्याग्रही भी इसी प्रकार मरनेके लिये तैयार हो गये थे, क्योंकि उन्हें थोडेसे शारीरिक सुखके लिये अपनी इज्जत बेचना मंजूर नहीं था। यहाँ अहिंसा अपने विधायक रूपमें थी। वह कभी अपनी प्रतिष्ठा नहीं गँवाती। यदि कोई असहाय बालिका अहिंसा धर्मके पालकके हाथमें पड जाये, तो उसकी सर्वाधिक और निश्चित रक्षा होगी; पर यदि वही बालिका किसी [illegible] हाथमें पड जाये, जो वहींतक उसकी रक्षा कर [illegible] है, तक उसके शस्त्र [illegible] कर [illegible] काकी उतनी [illegible]

अहिंसकके हाथमें हो, तो अत्याचारीको उस बालिकाके पास पहुँचनेके पहले उसके रक्षककी लाशपर पैर रखना पड़ेगा। लेकिन यदि वह बालिका किसी शस्त्रधारीके हाथमें पड़ जाये, तो वह वहींतक लड़कर शान्त हो जायेगा, जहाँतक उसका शारीरिक बल बना रहेगा। पहली अवस्थामें अत्याचारीके शरीरके मुकाबिलेमें रक्षक अपनी आत्मातक भिड़ा देता है, जिससे सम्भव है, कि अत्याचारीकी आत्मा भी जाग उठे और उस दशामें उस बालिकाकी प्रतिष्ठाकी रक्षाकी अन्य सब परिस्थितियोंकी अपेक्षा सबसे अधिक सम्भावना है। हाँ, उस समयकी बात अवश्य दूसरी है, जब कि वह स्वयं अपने व्यक्तिगत साहससे अपनी रक्षा करती हो।

"यदि आज हम हिन्दुओंमें अति अहिंसा धर्म पालन करनेके कारण मरदानगी नहीं है, तो उसका कारण यह नहीं है, कि हमलोग दूसरोंको आघात पहुँचाना नहीं जानते, बल्कि उसका कारण यह है, कि हमलोग मरनेसे डरते हैं। जो मनुष्य मरनेसे डरता है, जो किसी प्रकारके वास्तविक अथवा अनुचित भयके कारण भाग जाता है और सदा यही चाहता है, कि जो मनुष्य हानि पहुँचाना चाहता है, उसका नाश कोई और मनुष्य कर दे, वह मनुष्य सच्चा वेदानुयायी नहीं है।

"मेरी सम्मति तो यह है, कि यदि अहिंसाका ठीक ठीक तात्पर्य्य समझ लिया जाये, तो वह सब प्रकारके सांसारिक दोषोंके लिये रामबाणका काम देती है। अहिंसाकी सीमाका

छठा अध्याय

पाश्चात्य सभ्यता।

महात्माजीने कहा —"पाश्चात्य सभ्यता एक प्रकारका रोग है और यह ऐसा रोग है, जिसके रहनेमेंही सुख मालूम होता है। रोगोंमें दाद भी एक भयानक रोग है, पर लोगोंको उसके खुजानेमें थोडीसी लज्जत आनेके कारण चिकित्सा करनेकी विशेष चिन्ता नहीं रहती, फलत वह बढता बढता एक दिन भयानक रूप धारण कर लेता है और उससे सारा शरीर निकम्मा हो जाता है। यही हाल इस पाश्चात्य सभ्यताका है। इस सभ्यताके अनुयायी शरीर-सुखकोही अपने जीवनका सर्वस्व मानते हैं। प्रमाणके लिये देखो, कि सौ वर्ष पहले यूरोपके लोग जैसे मकानोंमें रहते थे, उनसे बहुत अच्छे मकानोंमें आज कल रहते हैं। इससे उनके शरीरको सुख मिलता है और यह बात उनकी सभ्यताका एक विशेष चिह्न समझी जाती है। पहले वे लोग चमडा पहनते थे और भालेही उनके हथियार होते थे। अब वे पतलून, कोट, कमीज़ तथा शृंगारके लिहाजसे कितनोंही तरहके कपडे पहनते हैं एवं भालोंके बदले पांच पांच नलियोंके रिवालवर पास रख कर बाहर निकलते हैं। का

देशोंके निवासी जूते आदिका व्यवहार नहीं करते थे, पर आज-कल यूरोपवालोंकी देखा देखी जब उन्होंने भी जूते तथा उनकी भाँतिही कोट, पतलून और कालर-नेकटाइका व्यवहार करना शुरू कर दिया है, तब ये लोग उन्हें 'सभ्य' समझने लगे हैं। पहले यूरोपमें लोग साधारण हलोंसे खुदही अपना काम चलाने लायक जमीन जोत लिया करते थे; उसके स्थानपर आज भाफकी कल द्वारा हल चलाकर एक मनुष्य बहुतसी जमीनकी काश्त कर सकता है और बहुतसा रुपया पैदा कर सकता है। यह भी सभ्यताका चिह्न समझा जाता है। पहले एक आदमी पैदल अथवा बैलगाडीपर १० २० कोसकी मञ्जिल तै कर लेता था, आज वही रेलमें बैठकर दिनभरमें ५०० कोस जा सकता है। यह तो सभ्यताकी चरमावस्था है। अब भी ज्यों ज्यों उन्नति होती जायेगी, त्यों-त्यों लोग वायुयानों द्वारा यात्रा करेंगे और कुछही घण्टोंमें संसारके जिस भागमें जाना चाहेंगे, वहीं पहुँच जायेंगे। उन्हें हाथ पैर हिलानेकी भी जरूरत न पड़ेगी। एक बटन दबाया, कि उनके कपड़े उनके सामने हाजिर हो जाया करेंगे। दूसरा बटन दबाया, कि समाचार पत्र आजाया करेंगे। तीसरा बटन दबाया, कि गाडी जुतकर तैयार होजाया करेगी। नित्य नये-नये पकान्न उड़ानेको मिलेंगे। हाथ पैरोंको तकलीफ देनेकी जरूरत न रहेगी। मेशीनेंही सारे काम करने लग जायेंगी। पहले युद्धके समय योद्धा लोग एक दूसरेसे भिड़ जाया करते थे,—एक योद्धा एक समयमें दो योद्धाओंसे नहीं

करते हैं। इन्हें एकान्त वासमें किसी प्रकार भी आनन्द नहीं मिल सकता।

"इस सभ्यताने केवल पुरुषोंकी नहीं, स्त्रियोंकी भी रेढ़ लगा दी है। जो देवियाँ गृहस्थकी प्रबन्धक और परिचालक होनी चाहिये, वे आज दिन सडकोंपर भटकती फिरती और कार खानोंमें गुलामी करती फिरती हैं।

"यह सभ्यता चिरस्थायिनी नहीं है। इसके नष्ट होनेमें, समय आनेपर तनिक भी देर न लगेगी। मुसलमान धर्मके पैगम्बर मुहम्मदके उपदेशानुसार यह शैतानी सभ्यता है। हिन्दू धर्मने इसे कलियुगकी उपाधि दी है। मैं इसके प्रभावका—स्वरूपका—पूर्ण रूपसे वर्णन नहीं कर सकता। यह अंगरेज जातिकी जीवनी शक्तिको नष्ट कर रही है। अतएव इसे तो पास न फटकने देना चाहिये। अङ्गरेजोंका शासन इसीने दूषित कर रखा है। पार्लामेंटपर इसका पूर्ण प्रभाव है।

"परन्तु दुःखके साथ कहना पडता है, कि इस डाइनने हिन्दुस्थानको भी अपने मोह पाशमें फाँसना शुरू कर दिया है। यदि इसका अभीही बहिष्कार नहीं किया गया, तो भारत एकदम गारत हो जायेगा, क्योंकि भारतका प्राण धर्म है और इस सभ्यताका पूर्ण प्रभाव धर्मपर ही पडता है। धर्मसे, मेरा मतलब हिन्दू, मुसलमान अथवा ईसाई आदि धर्मोंसे नहीं है। बल्कि मेरा सकेत सब धर्मके आधार भूत ईश्वरकी ओर है। यूरोपीय सभ्यता निरीश्वरवादिनी है।

"पाश्चात्य सभ्यताके पोषक हमलोगोंपर यह इलजाम लगाया करते हैं, कि 'तुम लोग सुस्त हो और हमलोग उद्योगी और पराक्रमी हैं।' इस अभियोगको हमलोगोंने सच्चा मान लिया है और इसीसे हम यूरोपियनोंका अनुकरणकर अपनी अवस्था सुधारना चाहते हैं।

"धर्म या ईश्वर हमको यह उपदेश देता है, कि मनुष्यको सांसारिक बातोंसे उदासीन और पारमार्थिक बातोंमें व्यवसायी बनना चाहिये। अपनी सांसारिक महत्वाकांक्षाओंको मर्य्यादाके भीतर रखना चाहिये और अपनी धार्मिक अभिलाषाओंको निःसीम विस्तारमें बढ़ाना चाहिये। इसीसे पुराकालीन भारतवासी अपने सारे उद्योग धर्म मूलक ही रखते थे। पर यह सभ्यताकी शराब हमें धर्मसे विमुख और क्षणिक सुखोंका सेवक बनानेका उद्योगकर रही है और भारतका इस चेष्टासे पूर्णपतन होगा। अस्तु।

"अब तो तुम समझ गये होगे, कि भारतमें अंगरेजोंको क्यों न रहने देना चाहिये? किन्तु मेरे प्यारे दोस्त! हमलोग अहिंसा-प्रिय हैं। हमारा स्वाराज्य अंगरेजोंको निकाल बाहर करनेसे ही प्राप्त न होगा, हम सच्चा स्वराज्य पासकेंगे अपनी पुरातन सभ्यताकी प्रतिष्ठा और यूरोपीय सभ्यताका बहिष्कार करनेसे।"



सातवाँ अध्याय

भारतीय सभ्यता।

अथात हमारा स्वराज्य।

महात्माजीने कहा,—"मेरा विश्वास है, कि हिन्दुस्तानमें पहले जिस सभ्यताका विकाश हुआ था, उसकी समता संसारकी कोई भी सभ्यता नहीं कर सकती। हमारे पूर्वज जिन बातोंका बीज बो गये हैं, उनकी बराबरी कोई चीज नहीं कर सकती। प्रमाणके लिये रूम, यूनान, पेरोआ जापान और चीन आदि देशोंकी ओर दृष्टिपात कर देखो इन देशोंका आदिम स्वरूप कभीका नष्ट हो चुका,—इनकी नींव कभीकी स्थान भ्रष्ट हो चुकी। किन्तु भारतवर्ष करोड़ों चोट खानेपर भी अभी —जैसे तैसे—अपने स्वरूपको अक्षुण्ण बनाये हुए है। उक्त यूरोपीय देशोंमें परस्पर सभ्यताका विनिमय हो चुका, पर भारतकी प्राचीन सभ्यता अभी तक अचल और अटल खड़ी है। यह उसके लिये विशेष गौरवकी बात है।

हिन्दुस्थानपर यह अभियोग लगाया जाता है, कि यहांके लोग इतने असभ्य और मूर्ख हैं, कि लाख सिखानेपर भी वे कोई परिवर्तन नहीं करते। किन्तु, यदि सच पूछिये तो यह अभियोग उसपर व्यर्थ ही लगाया जाता है। कारण यह, कि जिस बातको अनुभवकी निहाइपर पीट कर खरा पाया

है, उसे हमलोग कैसे बदल सकते हैं? बहुतसे लोग हिन्दुस्थानको यूरोपीय ढङ्गसे सुधार करनेके लिये जबर्दस्ती सलाह देते हैं, किन्तु हिन्दुस्थान टससे मस भी नहीं होता। मेरी समझमें यही उसका सौन्दर्य्य है,यही हमारी आशा-नौकाका मजबूत लङ्गर है। सभ्यता, चाल चलनके उस ढंगको कहते हैं,जो मनुष्यको उसका कर्त्तव्य-पथ दिखाता है। कर्त्तव्य पालन और सच्चरित्रता दोनों बातें एक ही हैं। सच्चरित्र बननेके लिये हमें अपने मनोविकारोंको अपना दास बनाना पड़ता है, वहाँ सच्चरित्र बनते ही हमें अपने स्वरूपको जान लेनेकी शक्ति प्राप्त हो जाती है। बस, सच्ची सभ्यताके अनुयायी या सभ्य हम उसी समय हो जाते हैं।

अनेक ग्रन्थकारोंके मतानुसार, यदि सभ्यताकी यह व्याख्या ठीक हो तो हमें या भारतवर्षको किसीसे भी कुछ सीखना नहीं है। हम समझते हैं, कि मन एक चञ्चल चिड़िया है, जिसे जितना भी चुगा मिलता है, उसका असन्तोष उतना ही बढ़ता जाता है। तदनुसार हम जितना भी मनोविकारोंका अनुसरण करेंगे, वे उतने ही बेकाबू हो जायेंगे। इसीलिये हमारे पूर्वजोंने हमारे विषय भोगकी मर्य्यादा बाँध दी थी। वे जानते थे, कि सुख एक मानसिक अवस्था है, कोई मनुष्य धनी होनेसे ही सुखी नहीं होता, और अनेक निर्धन भी सुखी दिखायी देते हैं, करोड़ों मनुष्य सदा गरीब ही रहेंगे। इन सब बातोंको सोचकर हमारे पूर्वजोंने हमें विलासिता और आमोद-प्रमोदसे दूर रहनेकी शिक्षा दी थी। हजारों वर्ष

समझते थे। तदनुसार जिस राष्ट्रका ऐसा संगठन हो, वह दूसरोंसे शिक्षा लेनेके बदले उन्हें शिक्षा दे सकता है। इस देशमें भी पहले अदालतें, वकील और डाक्टर थे, पर सभी एक सीमाके अन्दर बँधे हुए थे। सब जानते थे, कि ये ऐसी कोई बड़ी भारी इज्जत नहीं रखते। साथही ये कभी लोगोंको लूटना नहीं चाहते थे,—उनका मालिक बनना नहीं चाहते थे, बल्कि उनको अपना आश्रय दाता समझते थे। अदालतोंमें न्यायही होता था। साधारण नियम तो यह था, कि कोई व्यक्ति अदालत की शरण न ले, क्योंकि अदालतें या न्यायालय, उस जमानेमें राजधानियोंमें ही होते थे। साधारण लोग तो स्वतन्त्र रहकर गृहस्थीको उन्नत बनानेमें लगे रहते और अपनी सारी समस्याओंको अपने बड़ों या पञ्चोंकी सम्मतियोंसेही सुलझा लिया करते थे। सच तो यह है, कि स्वराज्य सुखका सच्चा आनन्द वे ही लूटते थे।

और अब भी, जहाँपर यह आधुनिक दुष्ट सभ्यता नहीं पहुँच सकी है, वहाँका दृश्य पहले जैसाही है। वहाँके लोग, यदि आप सभ्य स्वरूपमें जायें, तो वे नयी रोशनीके इस नूरको देख कर फँस पड़ेंगे। उनपर अंगरेज शासन नहीं करते न उनका शासन प्राचीन सभ्यताही करती है। सच पूछिये, तो आप स्वराज्यका सच्चा स्वरूप उन्हीं लोगोंसे जान सकेंगे। अतएव भारतीयोंका कर्त्तव्य होना चाहिये, कि अपनी वे पुरातन सभ्यताको अपनायें और सात्विक स्वराज्यका उपभोग करें।"

आठवाँ अध्याय

स्वदेशी।

महात्माजीने कहा,—"मैं कह चुका हूँ, कि स्वराज्यकी प्रतिष्ठा करनेके लिये हमें अपने जातीय कला कौशलका प्रचार करना चाहिये। क्योंकि हमारा पुरातन कला कौशल ही इस नवीन सभ्यताको दूर भगानेका प्रधान साधन है। साथही स्वराज्य और स्वदेशी कला-कौशलका समवाय सम्बन्ध है। अतएव जिस प्रकार स्वराज्य हमारा मत है, उसी प्रकार स्वदेशी हमारा परम व्रत होना चाहिये। इस व्रतके अभावसे देशके सारे कला-कौशल नष्ट होगये हैं। स्वदेशी स्वतन्त्रता-प्राप्तिका मुख्य द्वार है।

इसके अलावा स्वदेशीमें एक शक्ति है, जो हमें दूरके सम्बन्धियोंकी अपेक्षा निकटके सम्बन्धियोंकी सेवा और उपकारके लिये मजबूर करती है। साथही स्वदेशी हमारी एक धर्म सम्बन्धिनी विशेष सेवा है। यदि मुझे इस सम्बन्धमें कोई त्रुटि दिखायी दे, तो मेरा कर्त्तव्य है, मैं उसकी पूर्तिकर उसे अपने उपयोगी बना लूँ। लोग कहते हैं, भारत दिन पर दिन दरिद्र होता जाता है। मैं कहता हूँ, आर्थिक और शिल्पीय जीवनमें स्वदेशीसे उदासीन रहना ही भारतकी दरिद्रताका प्रधान कारण

है। यदि व्यापारकी कोई वस्तु बाहरसे न आयी होती, तो आज भारतमें दूध और दहीकी नदियाँ बहती होती। लेकिन ऐसा हुआ नहीं। हम भी लालची हो गये। हमारी तरह इङ्गलैण्ड भी लालची हो गया। यह प्रत्यक्ष है, कि भारत और इङ्गलैण्डमें सम्बन्ध-स्थापन होनेके आरम्भमें ही भूल हुई। परन्तु भारतने अपने यहाँ इङ्गलैंण्डको निमन्त्रण देकर बुलानेमें भूल नहीं की। इङ्गलैण्डने अपना एक सिद्धान्त बारम्बार घोषित किया है, कि हमने भारतवासियोंके कल्याणके लिये ही भारतको अमानतरूपमें अपनाया है। यदि यह सत्य है, तो लङ्काशायर-को बीचमें न कूदना चाहिये और यदि स्वदेशीका सिद्धान्त ठीक है, तो लङ्काशायर, बिना किसी प्रकारका कष्ट पहुँचाये, अलग किया जा सकता है। हाँ, थोड़े समयके लिये उसे कुछ धक्का लग सकता है। स्वदेशी-आन्दोलन सात्विक और अनुकरण करने योग्य एक धार्मिक सिद्धान्त है। मुझे अर्थ शास्त्रका अध्ययन करनेसे मालूम हुआ है, कि इङ्गलैण्ड सहजमें ही अपनी आवश्यक चीजोंको उत्पन्न कर स्वावलम्बी बन सकता है। यह बात मैंने इसलिये कही, कि आजकल इङ्गलैण्ड संसारके सब देशोंसे अधिक अपने देशको आवश्यक वस्तुओंको बाहरसे मँगाता है। परन्तु भारतको लङ्काशायर या और दूसरे देशों की आवश्यकता पूरी करनेके लिये उस समयतक तैयार न होना चाहिये, जबतक वह स्वयम् अपने देशकी आवश्यकताएँ पूरी न कर ले। भारत उसी समय अपनी आवश्यकताओंको

विदेशी वस्तुओंका व्यवहार न करनेकी दृढ प्रतिज्ञा करे, तो सहजमेंही यह दोष दूर किया जा सकता है। जीवनके किसी विभागमें कानूनके हस्तक्षेपको मैं अति घृणित समझता हूं। इसमें जहाँतक कानूनकी दाल न गले, वहाँतक अच्छा है। पर तोभी विदेशी मालके भारी महसूलको मैं सहन कर लूंगा। उसका स्वागत करूँगा और उसके लिये अनुरोध भी करूँगा। नेटालने, जो कि एक ब्रिटिश उपनिवेश है, मारिशस नामक दूसरे ब्रिटिश उपनिवेशोंसे आनेवाली चीनीपर कर बढा कर अपने देशकी चीनीकी रक्षा की। इङ्गलैण्डने भारतके साथ स्वतन्त्ररूपसे व्यापार करनेकी प्रथा चलाकर बड़ा भारी अपराध किया है। इस प्रथासे उसे भोजन अवश्य मिलता है, परन्तु भारतके लिये यह प्रथा हलाहलका काम करती है।

इस बातपर कई बार जोर दिया गया है,कि भारत किसी प्रकार अपनी आर्थिक दशाके कारण स्वदेशी वस्तुओंका ग्रहण नहीं कर सकता। परन्तु जो लोग इस प्रश्नको उठाते हैं, वे स्वदेशीको जीवनका एक आवश्यक नियम नहीं समझते, उनके लिये यह एक प्रकारसे ऐसे स्वदेश प्रेमका काम है, कि यदि इससे हमें किसी प्रकारका घाटा हो, तो उसे नहीं करना चाहिये। किन्तु स्वदेशीका इस स्थानपर अर्थ एक ऐसी धार्मिक शिक्षा है, जिसे ग्रहण करनेके लिये, यदि मनुष्यको किसी प्रकारका शारीरिक कष्ट भी उठाना पड़े, तो वह उसकी परवा न करे। भारतमें पिन और सूई नहीं बनती, इसलिये स्वदेशी व्रत ग्रहण करनेपर

इनके अभावकी चिन्ता न करनी चाहिये। क्योंकि स्वदेशी वस्तुओंके व्यवहारकी प्रतिज्ञाका पालन मनुष्य इस अवस्थामें भी कर सकता है, जब कि सैकड़ों लाभ दायक वस्तुएं अप्राप्य हो रही हैं। इसके अतिरिक्त जो लोग विदेशी वस्तुओंका त्यागना असम्भव समझकर स्वदेशीसे उदासीन हो रहे हैं, उनको यह समझना चाहिये, कि स्वदेशी एक ऐसा अन्तिम उद्देश्य है, जिसके निकट दृढ़ प्रयत्न करके पहुँचना नितान्त आवश्यक है। यदि हम केवल उन थोड़ीसी वस्तुओंको काममें लानेकीही प्रतिज्ञा करें, जो हमें मिल रही हैं, और बाकी वस्तुओंको जो हमारे देशमें अप्राप्य हैं, व्यवहारमें लायें, तो यह भी हमारे स्वदेशी लक्ष्यतक पहुँचनेके प्रयत्नोंमें समझा जायेगा। अब हमें एक और प्रश्नपर विचार करना है, जिसे लोग अक्सर स्वदेशीके सम्बन्धमें उठाया करते हैं। प्रश्न करनेवाले लोग स्वदेशीको ऐसा स्वार्थ पूर्ण नियम समझते हैं, कि जिसका सम्बन्ध सभ्यता या नीतिसे नहीं है। उनके मतसे स्वदेशी मत ग्रहण करना अपनेको फिरसे असभ्य और जङ्गली बताना है। मैं इस विषयकी हर एक बातका अलग अलग वर्णन करना नहीं चाहता। फिर भी मैं जोर देकर कहता हूँ, कि स्वदेशीही एक ऐसा नियम है, जो नम्रता और प्रेमके नियमसे दृढता पूर्वक सम्बद्ध है। क्योंकि जब मुझे अपनेही कुटुम्बियोंके पालन पोषणमें कठिनाई होती है, तब समस्त भारतकी सेवाके लिये तैयार हो बैठना केवल मूर्खता है। उत्तम यही है, कि हम पहले अपने

परिवारको देखें और समझें, कि हम उसकेद्वारा मानव संसार की सेवा कर रहे हैं। यही नम्रता है, और यही प्रेम है। कोई भी काम जिस नीयतसे किया जाता है, उस नीयतसे यह मालूम हो जाता है, कि वह काम अच्छा है या बुरा। उदाहरणके लिये दूसरेको पहुँचनेवाले कष्टका कुछ भी ध्यान न रखकर यद्यपि मैं अपने परिवारका भला कर सकता हूँ। पर यह आदर्श निकम्मा है। इससे सच पूछिये तो ऐसा करके न मैं अपने कुटुम्बियोंका भला कर सकता हूँ, और न स्वदेश कीही सेवा कर सकता हूँ। वरन मेरा यह समझ लेनाही कल्याणकारी है, कि परमात्माने मुझे अपने और अपने परिवार वालोंके भरण पोषणके लियेही हाथ-पैर दिये हैं। बस, इस प्रकार मैं अपने जीवनको और उनके जीवनको, कि जिनतक मैं पहुँच सकता हूँ, बिलकुल सादा और सरल बना सकता हूँ। साथही इस उदाहरणके अनुसार मैं अपने कुटुम्बियोंका पालन बिना किसीको दुःख या कष्ट पहुँचाये कर सकता हूँ।

यदि हरएक मनुष्य अपना जीवन इसी आदर्श जीवनकी तरह बिताने लगे, तो हमलोग एक आदर्श दशाको पहुँच जायें। पर सब लोग एक ही समयमें आदर्श दशातक नहीं पहुँचेंगे, वरन् हमलोगोंमें जो लोग इसकी सत्यताका अनुभव करके इसका अभ्यास करेंगे, वे सहजहीमें समझ सकेंगे, वह सुदिन दूर नहीं है। इस सिद्धान्तके अनुसार देखनेमें तो यह जान पड़ता है, कि मैं दूसरे देशोंको छोड़कर केवल भारतकी सेवा करनेके

लिये करता हूँ, पर वास्तवमें मैं दूसरे देशोंको हानि नहीं पहुँचा रहा हूँ। मेरा स्वदेश-प्रेम दूसरे देशोंको छोड़कर और सम्मिलित कर, एकतरहसे दोनोंकी सेवा करनेके लिये उत्तेजित करता है। यह किस तरह? इस तरह, कि मेरा विनीत ध्यान एक ओर तो अपनी जन्म भूमिपरही अधिक है, दूसरी ओर मेरी सेवा किसी प्रकारकी स्पर्द्धा या विरोधपर अवलम्बित नहीं है।

"Sic utere tuo ut alienum non laeds" यह वाक्य केवल एक कानूनी कहावतही नहीं है, वरन् यह जीवनका एक बहुत बड़ा सिद्धान्त है। यह अहिंसा प्रेमके अभ्यासकी सच्ची कुञ्जी है। तुम्हें इस वाक्यके प्रचारका उचित उद्योग करना चाहिये, कि "जिस स्वदेश प्रेमका मूल 'घृणा' होता है, वह नाशक होता है और जिस स्वदेश-प्रेमका मूल प्रेम होता है, वह जीवन प्रदान करता है।

युरुक,—"महात्मन्! आपने समयोपयोगी और आवश्यकतानुसार क्षेत्र बनानेके लिये जो-जो साधन बताये, उनको मैंने भले प्रकारसे समझ लिया, परन्तु आपने एक बात नितान्त असम्भव बतायी है। उसे आपके शब्दोंमें मैं 'एकता' कहूँगा। एकताका प्रचार उस देशमें तो अति सहजमें हो सकता है। जहाँ एकही भाषा, एकही धर्म और एकही जातिका निवास हो, पर भारतमें तो अगणित धर्म हैं और अगणितही जातियाँ हैं। उनमें एकता किस तरह स्थापित हो सकती है? तिसपर हिन्दू

और मुसलमान तो पुराने शत्रु हैं। इनकी प्रत्येक बातमें विरोध टपकता है। हिन्दू, अहिंसा धर्म मानते हैं और मुसलमान अहिंसाके घोर विरोधी हैं। इन दो जातियोंमेंही एकता का प्रचार हो सकता है? इनसे तो सदा एकराष्ट्रके एकत्वका खण्डन होता रहेगा।"

महात्मा गान्धीने कहा,—"देखो भाई! जिस देशमें भिन्न भिन्न धर्म, भिन्न-भिन्न भाषा और भिन्न-भिन्न जातियाँ हों, उस देशमें एकता या राष्ट्रका सङ्गठन होना असंभव है, मैं इस बातको नहीं मानता। ईसाई, मुसलमान आदि विदेशियोंके आनेसे राष्ट्र नष्ट हो जाये या एकता भङ्ग हो जाये यह कोई जरूरी बात नहीं है। क्योंकि एक बड़े राष्ट्रमें विदेशियोंके समानेकी काफी गुञ्जाइश होती है। और सच पूछिये, तो कोई भी देश तभी राष्ट्र कहा जा सकता है, जिसमें यह उदार गुण हो। उस देशमें यह शक्ति होनी चाहिये, कि वह बाहरवालोंको भी अपना ले। भारतवर्षमें सदासे इस गुण—इस शक्तिका—विकास देखा गया है। सच पूछिये, तो संसारमें जितने जीव हैं, उतने ही धर्म हैं। पर जो लोग राष्ट्रीयताकी दिव्य ज्योति का अनुभव करते हैं, वे एक दूसरेके धर्ममें कभी हस्तक्षेप नहीं करते। जो करते हैं, वे किसी समय भी एक राष्ट्र होनेके योग्य नहीं हैं। यदि हिन्दुओंका यह खयाल हो, कि हिन्दुस्थानमें केवल हिन्दू ही रहें, तो यह उनका स्वप्न है। हिन्दू, पारसी, मुसलमान और ईसाई अर्थात् जिन जिन लोगोंने हिन्दुस्थानको

..पना देश माना है, वे सब भाई भाई हैं। अत उन्हें यदि ..यल अपनाही स्वार्थ साधना हो, तो उन्हें एका करके ही ..हना चाहिये। संसारके किसी भागमें एक धर्म और एक राष्ट्री-..ता समानार्थक नहीं है। और हिन्दुस्तानमें भी ऐसा कभी ..था। और तुम जो यह कहते हो, कि "हिन्दू मुसल्मानोंमें ..स्वभाव-सिद्ध शत्रुता है," सच पूछो तो यह वाक्य ही दोनोंके ..दुश्मनोंने गढ़े हैं। हिन्दू और मुसल्मान जब आपसमें लड़ते ..थे, तब एक दूसरेकी शानमें वे ऐसी बातें कहते थे। पर अब ..आपसमें लड़ना उन्होंने मुद्दतसे छोड़ दिया है। तब स्वभाव-..सिद्ध शत्रुता कैसी? हां, यह भी याद रखो, कि अङ्गरेजोंका ..यहाँ अधिकार होनेके बादसे ही यह लड़ाई बन्द नहीं हुई है। ..मुसल्मान राजाओंके समयमें हिन्दू सुखी और समृद्ध थे, और ..हिन्दू राजाओंके शासनमें मुसल्मान भी खुशहाल थे। दोनोंने ..यह समझ लिया था, कि आपसमें लड़ना आपही अपने पैरोंपर ..कुल्हाड़ी मारना है। रहा धर्मकी बात, सो क्या हिन्दू और ..क्या मुसल्मान कोई भी तलवारसे धर्मान्तर न करेगा। इसलिये ..दोनोंने शान्तिके साथ ही रहना निश्चय किया। झगड़े उस समय ..शुरू हुए, जब अङ्गरेज आये।

आपने अनैक्य-सूचक जिन शब्दोंका प्रयोग किया है, वे उस ..समयके गढ़े हुए हैं, जब हिन्दू और मुसल्मान दोनों आपसमें ..लड़ते थे। अब उनका ख्याल देना जान-बूझकर घाटा उठाना ..है। क्या यह बात सच नहीं है, कि कितने ही हिन्दू और

हुआ और मुसलमानोंका भी। अतएव गायकी रक्षा करनेका मैं एक ही उपाय जानता हूँ और वह यह कि, न तो मुसलमान धर्मही इस बातपर जोर डालता है, कि गायकी कुर्बानीसे ईश्वर प्राप्ति होती है और न हिन्दू धर्महीं, इस बातका समर्थन करता है, कि अन्य हजारों प्राणियोंकी हत्या करके भी गोरक्षा करनेसे प्रभु प्रसन्न होते हैं। हमें अपने स्वार्थ, मुसलमानोंके स्वार्थ और यहाँतक, कि देशभरके स्वार्थपर दृष्टि रखते हुए इस बातपर विचार करना चाहिये, कि गायके जीवनसे हमारा कितना उपकार होता है और गायकी हत्यासे कितनी हानि पहुँचती है। जब यह सिद्ध हो जाये, कि गायके जीवनसे केवल हिन्दुओंका नहीं मुसलमानादि सभी देशवासियोंका प्रभूत उपकार होता है, तब मुसलमानोंसे यह प्रार्थना करनी चाहिये "भाई! जब तुम भी इस बातको स्वीकार करते हो, कि एक गाय अपने जीवनसे बहुतोंका उपकार कर सकती है, तब तुम ऐसे उपकारी प्राणीको क्यों मारते हो? अपने तनिकसे स्वार्थके लिये देशभरके स्वार्थको क्यों नष्ट करते हो? ऐसे उपयोगी प्राणीकी रक्षाके लिये तो हम और तुम, सभीको जी-जानसे प्रयत्न करना चाहिये। यदि तुम अपना स्वार्थ नष्ट नहीं कर सकते, तो तुम अपने कुरानकी आज्ञानुसार दूसरे जीवोंकी कुर्बानी कर लो। यदि वह इतनेपर भी न माने, तो मैं समझूँगा, वह जाहिल है, जिद्दी है, उसे समझाना दुश्वार है, अतः मैं गायको उसके साथ जाने दूँगा। क्योंकि बात मेरे वशकी

बाहर हो गयी। यदि गायकी दुर्गति मुझसे नहीं देखी जाती, तो उसे बचानेके लिये मेरा धर्म है, कि मैं अपनी जान दे दूँ, पर अपने भाईकी जान भूलकर भी न लूँ। हमारा धर्म इसी बातका अनुमोदन करता है।

जब मनुष्य किसी बातकी जिद पकड़ लेता है, तो मामला बड़ा टेढ़ा हो जाता है। इस जिद्में गायको मैं अपनी ओर खींचूँगा और मुसल्मान अपनी तरफ। यदि मैं बल प्रयोग करूँगा, तो वह भी करेगा। ऐसी अवस्थामें जिदको पास भी न आने देना चाहिये और शान्तिके साथ—नम्रताके साथ हमें उसके आगे अपना सिर झुका देना चाहिये ; असम्भव नहीं, कि वह आपकी इस नम्रताका कायल हो जाये। और यदि वह अपना सिर न भी झुकाये, तो हमारा सिर झुकाना किसी तरह भी अन्याय न समझा जायेगा।

सच पूछो, तो हिन्दुओंकी जिद्के कारण ही आज बेतरह गो हत्या होती है। ये गो-रक्षिणी सभाए ही गो हत्याकारिणी हैं। क्योंकि जब हम लोग यही भूल गये, कि गो रक्षा कैसे होती है, तभी तो इन सभाओंकी आवश्यकता हुई। पर ये सभाएँ सच्चे उद्देश्यको भूलकर आज भ्रष्ट उद्देश्यका प्रचार कर रही हैं। मैं पूछता हूँ, यदि अपनाही सगा भाई गाय मारनेपर उतारू हो जाये, तो उस वक्त क्या करना चाहिये ? क्या उसे मार डालना चाहिये अथवा उसके पैरोंपर गिर कर गाय न मारनेके लिये प्रार्थना करनी चाहिये ? यदि आप उसके

अपने नीच स्वभावसे प्रेरित होकर उसे तोड देंगे, तो जबतक हममेंसे कोई उनका साथ न देगा, तबतक यह कार्य्य होना एकदम असम्भव है। क्योंकि यदि भाई-भाई मिलकर रहना चाहते हैं, तो कोई तीसरा आदमी बीचमें आकर उन्हें कैसे अलग कर सकता है? यदि वे दुष्टोंकी बातोंमें आते हैं, तो हम उन्हें मूर्ख कहेंगे, तीसरे आदमीको नहीं। मट्टीका घडा यदि कच्चा हो तो एक या दो ढेले मारनेसे ही वह टूट जायेगा। घडेकी रक्षा तभी हो सकती है, जब वह लोहे जैसा मजबूत बनाया जाये। मतलब यह, कि भारतमें एकता प्रचार करनेसे पहले, अपने दिल पक्के करने होंगे। उस समय हमें कोई भी सङ्कट छिन्न-भिन्न न कर सकेगा।

मैं यह नहीं कहता, कि एक राष्ट्र हो जानेपर हिन्दू और मुसलमान जीवन भर न लडेंगे। भाई भाई एक साथ रहते हुए लडा ही करते हैं। अत हम लडेंगे भी और कभी-कभी एक दूसरेके प्राणोंके गाहक भी हो जायेंगे। पर मेरे इस कथनका तुम यह भाव न समझ लेना, कि लडना हमारा धर्म है। वरन यह सम्भावना इसलिये की गयी, कि ससारके सभी मनुष्य तो शान्त प्रकृतिके नहीं होते? जब लोग भडक उठते है, तब मूर्खतावश कितने ही अनर्थ कर डालते [illegible] सब निभाना होगा। आपसमें [illegible] माँगने जायें अदालतों [illegible] क्योंकि हैं, वे हानि उठा [illegible] तैयार

नवाँ अध्याय

शिक्षा।

युवकने पूछा, —"महाराज! जब हमारा देश, समस्त जातियोंमें एकताका प्रचार होजानेसे एक राष्ट्र हो जायेगा, तब उसमें स्वराज्य स्थापन करनेसे पहले राष्ट्रीय शिक्षा और राष्ट्रीय भाषाका भी तो प्रचार होना आवश्यक है! यदि है, तो आप उस समय कालिज्जी शिक्षाको पसन्द करेंगे, अथवा और किसी प्रकारकी शिक्षाको? राष्ट्र-भाषाके लिये देशको किस भाषाको चुनेंगे?"

महात्माजीने कहा,—"अच्छा राष्ट्रीय शिक्षाकी पद्धति चुननेके पहले हम शिक्षा शब्दपर विचार करेंगे। देखो, शिक्षा शब्दका, आजकल अर्थ लगाया जाता है, अक्षर ज्ञान द्वारा लौकिक विषयोंको जानना। यदि यह अर्थ ठीक है, तो हम इसकी उपमा एक ऐसे शास्त्रसे दे सकते हैं, जिसका सदुपयोग भी हो सकता है, और दुरुपयोग भी, क्योंकि जिस शास्त्रसे एक बीमार अच्छा किया जाता है, उससे दूसरे मनुष्यकी जान भी ली जा सकती है। यही बात अक्षरोंके ज्ञानकी भी है। हम रोज ही इस बातका अनुभव कर रहे हैं, कि बहुतसे आदमी

इसका दुरुपयोग करते हैं। सदुपयोग करनेवालोंकी संख्या अत्यन्त क्षुद्र है। और यदि यह बात सच है, तो इससे लाभ होनेकी अपेक्षा हानि ही अधिक हुई है।

आधुनिक शिक्षाका इससे अधिक और कोई सुफल नहीं फल सकता। इससे अच्छा यही है, कि हम अपढ ही रहें। हम देखते हैं, कि गाँवका रहनेवाला एक अनपढ किसान बडी ईमानदारीके साथ उदर-पोषण करता है। तिसपर नफा यह, कि उसे संसारका साधारण ज्ञान भी रहता है। वह यह खूब जानता है, कि अपने भाई बन्धु, माता पिता और पड़ पड़ौसीसे कैसा व्यवहार करना चाहिये। वह नीति मत्ताके नियमोंसे भी काफी वाकिफ होता है और उन्हें मौके मौकेपर अच्छी तरहसे पालता भी है, पर उसे अक्षर ज्ञान नाम मात्रको भी नहीं होता। अब बताइये, उसे आप अक्षर ज्ञान कराकर क्या देना चाहते हैं? क्या अक्षर सीखनेसे उसके सुखोंमें पहले-की अपेक्षा अधिक वृद्धि हो जायेगी? क्या आप उसे अपनी झोंपडी और अपने भाग्यसे असन्तुष्ट कराना चाहते हैं? और यदि आप यही चाहते हों, तो भी इसके लिये आधुनिक शिक्षा-की आवश्यकता नहीं है। पाश्चात्य विचार परम्पराके प्रवाह-में प्रवाहित होकर, बिना समझे बूझे हम लोगोंने यह मान लिया है, कि सर्वसाधारणको इस प्रकारकी शिक्षा दी जानी चाहिये।

आधुनिक शिक्षाके दो भेद हैं, एक आरम्भिक शिक्षा दूसरी उच्च शिक्षा। बालकोंको लिखना पढ़ना और हिसाब

करना सिखलानेका नाम आरम्भिक शिक्षा है। उच्च शिक्षामें भूगोल, ज्योतिष, बीजगणित और रेखागणित शामिल हैं। मैंने दोनों प्रकारकी ही शिक्षाएँ पायीं हैं। किन्तु इस शिक्षासे मुझे क्या लाभ पहुँचा ? पड़ोसियों अथवा जातिको क्या नफा हुआ ? सच पूछिये, तो मेरे अबतकके जीवनमें उक्त विषयोंको कार्य्यमें-परिणत अथवा लाभ उठानेका एक भी मौका न आया। प्रोफेसर हक्सलेने शिक्षाकी इस प्रकार व्याख्या की है, कि "जिस मनुष्यको बचपनमें ऐसी शिक्षा मिली हो, जिससे उसका शरीर उसकी इच्छाकी आज्ञाका पालन करनेमें तत्पर हो, और उसके रहनेके योग्य सब काम वह स्वाभाविक रूपसे तथा आनन्दके साथ करता हो, जिसकी बुद्धि स्वच्छ, स्थिर और भले बुरेकी पहचान करनेमें समर्थ हो, जिसके मनमें प्रकृतिके सत् सिद्धान्तोंके ज्ञानका खज़ाना हो, जिसके मनो-विकार इच्छा शक्तिके अधीन और विवेक बुद्धिके सेवक हों, जिसने बुराइ-मात्रसे घृणा करना और अपने भाइयोंको अपने ही समान समझना सीखा हो, मैं उसीको शिक्षित व्यक्ति कह सकता हूँ।" मेरी दृष्टिमें उसीने सच्ची शिक्षा पायी है। अन्य सब कुशिक्षित हैं, क्योंकि उसका स्वर प्रकृतिके स्वरसे मिला हुआ है। वह अपनी शिक्षाकी बदौलत प्रकृतिसे लाभ उठायेगा और प्रकृति उससे पूरा लाभ उठायेगी।"

यदि यही सच्ची शिक्षा है, तो मुझे यह जोर देकर कहना पड़ता है, कि जिन शास्त्रोंके नाम ऊपर गिनाये गये हैं और

जिन्हें मैंने पढ़ा है, मुझे अपनी इन्द्रियोंको वशमें करनेमें
कुछ भी सहायता लेनी नहीं पड़ी। इसलिये हमें आधु
कालिजी शिक्षाकी तनिक भी आवश्यकता नहीं है। का
शिक्षासे मनुष्यमें मनुष्यत्वका विकाश नहीं होता।
कर्त्तव्य पालनकी शिक्षा नहीं मिलती।

सम्भव है, यहाँपर मुझसे कोई यह प्रश्न करने लगे,
यदि मैंने उच्च शिक्षा न पायी होती, तो मैं ऊपर कही हुई
बातें किसके सहारे बता सकता? इसके उत्तरमें मेरा यह नि
है, कि यदि मुझे वर्त्तमान उच्च शिक्षा न मिली होती, तो उ
मेरे जीवनमें किसी प्रकारका फर्क नहीं पड़ सकता था।
बातें मैंने ऊपर कहीं हैं, वे उच्च-शिक्षाके फलसे उत्पन्न नहीं
हैं, वरन् वे आधुनिक शिक्षाका फल देखकर हुई हैं। मैं
बातोंसे किसीका उपकार नहीं कर रहा, वरन् यह मेरी, जा
लिये एक सेवा स्वरूप है। हम और आप सारा देश कुशिक्ष
के चक्रमें फँसा हुआ है। लेकिन मैं उसके दुष्परिणाम
आजकल अपनेको स्वतन्त्र समझता हूँ और अपने अनुभव
आपको भी स्वतंत्र बनना चाहता हूँ। एवं इसीलिये शिक्ष
वास्तविक स्वरूपको यहाँपर व्यक्त कर रहा हूँ।

इसके सिवा ऊपर कही हुई बातोंका यह मतलब भी न
है, कि किसी अवस्थामें, भी अक्षर ज्ञानकी आवश्यकता न
है। मैंने केवल इतनाही दिखलाया है, कि यह कोई सार सर्व
नहीं है। जहाँ इसका स्थान है, वहाँ उपयोग भी है, औ

इसका स्थान वहीं है, जहाँ हम अपनी इन्द्रियोंको वशमें ला चुके हों और अपनी नीति-सत्ताकी नींव सुदृढ़ कर चुके हों। इतना करनेके पश्चात् यदि यह मालूम पड़े, कि यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये, तो उससे हमारा लाभ हो सकता है। इससे यह सिद्ध हो गया, कि इस शिक्षाको अनिवार्य्य करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। हमारी शिक्षा-पद्धति हमारे लिये काफी है। उसमें चरित्र गठन सबसे प्रथम आता है। एवं यही आरम्भिक शिक्षा है। इस नींवपर बनी हुई अट्टालिका चिर-स्थायी होगी।

यद्यपि मेरे इस कथनसे यह ध्वनि निकलती है, कि हमें अङ्गरेजी शिक्षाकी तनिक भी आवश्यक्ता नहीं, क्योंकि उससे हममें कोरी गुलामीका भाव आता है। किन्तु अंगरेजोंसे व्यवहार रखनेके लिये उसका सीखना बुरा नहीं है।

मेरे मतके अनुसार यह एक ध्यान रखनेकी बात है, कि जिन पद्धतियोंको यूरोपियनोंने चलाकर अब त्याग दिया है, वे अभीतक हम लोगोंमें प्रचलित हैं। उनके यहाँके विद्वान् उसमें बराबर परिवर्त्तन करते रहते हैं। हमलोग अज्ञानवश उनकी फेंकी हुई जूठ ही स्वीकार किया करते हैं। वे लोग अपना अपना पद ऊँचा करनेके लिये सदा उद्योग करते रहते हैं। वेल्स इङ्गलैण्डका एक छोटासा हिस्सा है। यहाके लोग अपनी वेल्स भाषाका पुनरुद्धार करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। ब्रिटिश-साम्राज्यके प्रधान मन्त्री मिस्टर लायड जार्ज वेल्स

जिन्हें मैंने पढा है, मुझे अपनी इन्द्रियोंको वशमें करनेमें उनसे कुछ भी सहायता लेनी नहीं पडी। इसलिये हमें आधुनिक कालिजी शिक्षाकी तनिक भी आवश्यकता नहीं है। कालिजी शिक्षासे मनुष्यमें मनुष्यत्वका विकाश नहीं होता। इससे कर्त्तव्य पालनकी शिक्षा नहीं मिलती।

सम्भव है, यहाँपर मुझसे कोई यह प्रश्न करने लगे, कि यदि मैंने उच्च शिक्षा न पायी होती, तो मैं ऊपर कही हुई सारी बातें किसके सहारे बता सकता? इसके उत्तरमें मेरा यह निवेदन है, कि यदि मुझे वर्त्तमान उच्च शिक्षा न मिली होती, तो उससे मेरे जीवनमें किसी प्रकारका फर्क नहीं पड सकता था। जो बातें मैंने ऊपर कहीं हैं, वे उच्च-शिक्षाके फलसे उत्पन्न नहीं हुई हैं, वरन् वे आधुनिक शिक्षाका फल देखकर हुई हैं। मैं इन बातोंसे किसीका उपकार नहीं कर रहा, वरन् यह मेरी, जातिके लिये एक सेवा स्वरूप है। हम और आप सारा देश कुशिक्षा के चक्रमें फँसा हुआ है। लेकिन मैं उसके दुष्परिणामोंसे आजकल अपनेको स्वतन्त्र समझता हूँ और अपने अनुभवसे आपको भी स्वतन्त्र बनना चाहता हूँ। एवं इसीलिये शिक्षाके वास्तविक स्वरूपको यहाँपर व्यक्त कर रहा हूँ।

इसके सिवा ऊपर कही हुई बातोंका यह मतलब भी नहीं है, कि किसी अवस्थामें भी अक्षर ज्ञानकी आवश्यकता नहीं है। मैंने केवल इतनाही दिखलाया है, कि यह कोई सार सर्वस्व नहीं है। जहाँ इसका स्थान है, वहाँ उपयोग भी है, और

इसका स्थान वहीं है, जहाँ हम अपनी इन्द्रियोंको वशमें ला चुके हों और अपनी नीति-सत्ताकी नींव सुदृढ़ कर चुके हों। इतना करनेके पश्चात् यदि यह मालूम पड़े, कि यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये, तो उससे हमारा लाभ हो सकता है। इससे यह सिद्ध हो गया, कि इस शिक्षाको अनिवार्य्य करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। हमारी शिक्षा-पद्धति हमारे लिये काफी है। उसमें चरित्र गठन सबसे प्रथम आता है। यह यही आरम्भिक शिक्षा है। इस नींवपर बनी हुई अट्टालिका चिर-स्थायी होगी।

यद्यपि मेरे इस कथनसे यह ध्वनि निकलती है, कि हमें अङ्गरेजी शिक्षाकी तनिक भी आवश्यक्ता नहीं, क्योंकि उससे हममें कोरी गुलामीका भाव आता है। किन्तु अंगरेजोंसे व्यवहार रखनेके लिये उसका सीखना बुरा नहीं है।

मेरे मतके अनुसार यह एक ध्यान रखनेकी बात है, कि जिन पद्धतियोंको यूरोपियनोंने चलाकर अब त्याग दिया है, वे अभीतक हम लोगोंमें प्रचलित हैं। उनके यहाँके विद्वान् उसमें बराबर परिवर्त्तन करते रहते हैं। हमलोग अज्ञानवश उनकी फेंकी हुई जूठ ही स्वीकार किया करते हैं। वे लोग अपना अपना पद ऊँचा करनेके लिये सदा उद्योग करते रहते हैं। वेल्स इङ्गलैण्डका एक छोटासा हिस्सा है। वहाँके लोग अपनी वेल्स भाषाका पुनरुद्धार करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। ब्रिटिश साम्राज्यके प्रधान मन्त्री मिस्टर लायड जार्ज वेल्स

जिन्हें मैंने पढा है, मुझे अपनी इन्द्रियोंको वशमें करनेमें उनसे कुछ भी सहायता लेनी नहीं पड़ी। इसलिये हमें आधुनिक कालिजी शिक्षाकी तनिक भी आवश्यकता नहीं है। कालिजी शिक्षासे मनुष्यमें मनुष्यत्वका विकाश नहीं होता। इससे कर्त्तव्य पालनकी शिक्षा नहीं मिलती।

सम्भव है, यहाँपर मुझसे कोई यह प्रश्न करने लगे, कि यदि मैंने उच्च शिक्षा न पायी होती, तो मैं ऊपर कही हुई सारी बातें किसके सहारे बता सकता? इसके उत्तरमें मेरा यह निवेदन है, कि यदि मुझे वर्त्तमान उच्च शिक्षा न मिली होती, तो उससे मेरे जीवनमें किसी प्रकारका फर्क नहीं पड सकता था। जो बातें मैंने ऊपर कही हैं, वे उच्च-शिक्षाके फलसे उत्पन्न नहीं हुई हैं, वरन् वे आधुनिक शिक्षाका फल देखकर हुई हैं। मैं इन बातोंसे किसीका उपकार नहीं कर रहा, वरन् यह मेरी, जातिके लिये एक सेवा स्वरूप है। हम और आप सारा देश कुशिक्षा के चक्रमें फँसा हुआ है। लेकिन मैं उसके दुष्परिणामोंसे आजकल अपनेको स्वतन्त्र समझता हूँ और अपने अनुभवसे आपको भी स्वतन्त्र बनना चाहता हूँ। एव इसीलिये शिक्षाके वास्तविक स्वरूपको यहाँपर व्यक्त कर रहा हूँ।

इसके सिवा ऊपर कही हुई बातोंका यह मतलब भी नहीं है, कि किसी अवस्थामें भी अक्षर ज्ञानकी आवश्यकता नहीं है। मैंने केवल इतनाही दिखलाया है, कि यह कोई सार सर्वस्व नहीं है। जहाँ इसका स्थान है, वहाँ उपयोग भी है, और

इसका स्थान वही है, जहाँ हम अपनी इन्द्रियोंको वशमें ला चुके हों और अपनी नीति-सत्ताकी नींव सुदृढ कर चुके हों। इतना करनेके पश्चात् यदि यह मालूम पड़े, कि यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये, तो उससे हमारा लाभ हो सकता है। इससे यह सिद्ध हो गया, कि इस शिक्षाको अनिवार्य्य करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। हमारी शिक्षा-पद्धति हमारे लिये काफी है। उसमें चरित्र गठन सबसे प्रथम आता है। एवं यही आरम्भिक शिक्षा है। इस नींवपर बनी हुई अट्टालिका चिर-स्थायी होगी।

यद्यपि मेरे इस कथनसे यह ध्वनि निकलती है, कि हमें अङ्गरेजी शिक्षाकी तनिक भी आवश्यकता नहीं, क्योंकि उससे हममें कोरी गुलामीका भाव आता है। किन्तु अंगरेजोंसे व्यवहार रखनेके लिये उसका सीखना बुरा नहीं है।

मेरे मतके अनुसार यह एक ध्यान रखनेकी बात है, कि जिन पद्धतियोंको यूरोपियनोंने चलाकर अब त्याग दिया है, वे अभीतक हम लोगोंमें प्रचलित हैं। उनके यहाँके विद्वान् उसमें बराबर परिवर्त्तन करते रहते हैं। हमलोग अज्ञानवश उनकी फेंकी हुई जूठ ही स्वीकार किया करते हैं। वे लोग अपना-अपना पद ऊँचा करनेके लिये सदा उद्योग करते रहते हैं। वेल्स इङ्गलैण्डका एक छोटासा हिस्सा है। वहाँके लोग अपनी वेल्स भाषाका पुनरुद्धार करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। ब्रिटिश-साम्राज्यके प्रधान मन्त्री मिस्टर लायड जार्ज वेल्स

जिन्हें मैंने पढा है, मुझे अपनी इन्द्रियोंको वशमें करनेमें उनसे कुछ भी सहायता लेनी नहीं पडी। इसलिये हमें आधुनिक कालिजी शिक्षाकी तनिक भी आवश्यकता नहीं है। कालिजी शिक्षासे मनुष्यमें मनुष्यत्वका विकाश नहीं होता। इससे कर्त्तव्य पालनको शिक्षा नहीं मिलती।

सम्भव है, यहाँपर मुझसे कोई यह प्रश्न करने लगे, कि यदि मैंने उच्च शिक्षा न पायी होती, तो मैं ऊपर कही हुई सारी बातें किसके सहारे बता सकता? इसके उत्तरमें मेरा यह निवेदन है, कि यदि मुझे वर्त्तमान उच्च शिक्षा न मिली होती, तो उससे मेरे जीवनमें किसी प्रकारका फर्क नहीं पड सकता था। जो बातें मैंने ऊपर कहीं हैं, वे उच्च-शिक्षाके फलसे उत्पन्न नहीं हुई हैं, वरन् वे आधुनिक शिक्षाका फल देखकर हुई हैं। मैं इन बातोंसे किसीका उपकार नहीं कर रहा, वरन् यह मेरी, जातिके लिये एक सेवा स्वरूप है। हम और आप सारा देश कुशिक्षा के चक्रमें फँसा हुआ है। लेकिन मैं उसके दुष्परिणामोंसे आजकल अपनेको स्वतन्त्र समझता हूँ और अपने अनुभवसे आपको भी स्वतन्त्र बनना चाहता हूँ। एवं इसीलिये शिक्षाके वास्तविक स्वरूपको यहाँपर व्यक्त कर रहा हूँ।

इसके सिवा ऊपर कही हुई बातोंका यह मतलब भी नहीं है, कि किसी अवस्थामें भी अक्षर ज्ञानकी आवश्यकता नहीं है। मैंने केवल इतना ही दिखलाया है, कि यह कोई सार-सर्वस्व नहीं है। जहाँ इसका स्थान है, वहाँ उपयोग भी है, और

इसका स्थान वहाँ है, जहाँ हम अपनी इन्द्रियोंको वशमें ला चुके हों और अपनी नीति-मत्ताकी नींव सुदृढ कर चुके हों। इतना करनेके पश्चात् यदि यह मालूम पड़े, कि यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये, तो उससे हमारा लाभ हो सकता है। इससे यह सिद्ध हो गया, कि इस शिक्षाको अनिवार्य्य करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। हमारी शिक्षा-पद्धति हमारे लिये काफी है। उसमें चरित्र गठन सबसे प्रथम आता है। एवं यही आरम्भिक शिक्षा है। इस नींवपर बनी हुई अट्टालिका चिर-स्थायी होगी।

यद्यपि मेरे इन कथनसे यह ध्वनि निकलती है, कि हमें अङ्गरेजी शिक्षाकी तनिक भी आवश्यकता नहीं, क्योंकि उससे हममें कोरी गुलामीका भाव आता है। किन्तु अंगरेजोंसे व्यवहार रखनेके लिये उसका सीखना बुरा नहीं है।

मेरे मतके अनुसार यह एक ध्यान रखनेकी बात है, कि जिन पद्धतियोंको यूरोपियनोंने चलाकर अब त्याग दिया है, वे अभीतक हम लोगोंमें प्रचलित हैं। उनके यहाँके विद्वान् उसमें बराबर परिवर्त्तन करते रहते हैं। हमलोग अज्ञानवश उनकी फेंकी हुई जूठ ही स्वीकार किया करते हैं। वे लोग अपना-अपना पद ऊँचा करनेके लिये सदा उद्योग करते रहते हैं। वेल्स इङ्गलैण्डका एक छोटासा हिस्सा है। वहाँके लोग अपनी वेल्स भाषाका पुनरुद्धार करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। ब्रिटिश साम्राज्यके प्रधान मन्त्री मिस्टर लायड जार्ज

मैदान छोडकर भाग जा सकती है। हम गुलामोंको अपनी गुलामीकी बेडियाँ तोडनेके लिये यही सच्चा उपाय है। हमारी गुलामीके कारण राष्ट्र गुलाम हुआ है और हमारे स्वतन्त्र होनेसे राष्ट्र स्वतन्त्र होगा। साथ ही मैं यह बात फिर जोर देकर कहता हूँ, कि हमारी शिक्षा मातृ-भाषा द्वारा होनी चाहिये और वह धार्मिकतासे पूर्ण हो। धार्मिकतासे हीन शिक्षा निरी श्वर वादिनी होती है। पर हिन्दुस्थान किसी समय भी ईश्वर-हीन न होगा। क्योंकि घोर नास्तिकता इस देशमें स्थान नहीं पा सकती। यही हमारी शुद्ध राष्ट्रीय शिक्षाका स्वरूप है। ऐसी शिक्षाके सर्वत्र प्रचारित होनेका काम निश्चयही कठिन है। जिस समय मैं देशमें धार्मिक शिक्षाका प्रचार करनेकी बात सोचने लगता हूँ, उस समय मेरा सिर घूम जाता है। आज कल हमारे धर्म गुरु धूर्त्त और स्वार्थी हैं। पहले हमें उनका सुधार करना पडेगा। मुल्ला, पादरी और पुरोहित लोग धार्मिक शिक्षाकी कुञ्जी अपने हाथमें लिये हुए हैं। उन लोगों-से विनयपूर्वक उस कुञ्जीको मांगना होगा। यदि वे न देंगे, तो अङ्गरेजी शिक्षासे हम लोगोंने जो शक्ति प्राप्त की है, उसे धार्मिक शिक्षामें व्यय करना पडेगा। यह कोई कठिन काम नहीं है। अभी समुद्रका किनारा ही अपवित्र हुआ है। समुद्र शुद्ध है। अतएव हमें केवल किनारेकी ही शुद्धि करनी होगी। किनारेकी कोटिमें हम लोग हैं। हम आसामीसे शुद्ध होकर दूर दूरतक शुद्धिका प्रचार कर सकते हैं। यह शुद्धि प्राचीनता-

की प्रतिष्ठा है। भारतको फिरसे प्राचीन गौरवसे युक्त करनेके लिये हमें प्राचीनताकी ओर लौट जाना पड़ेगा। हमारी अपनी सभ्यताके अन्दर स्वभावतः ही उन्नति, अवनति, सुधार और प्रतिकार होंगे। पर एक काम करना होगा। वह यह है, कि पाश्चात्य-सभ्यताका एकदम बहिष्कार कर दो। बाकी सारी बातें आप ही हो जायेंगी। उसके सम्बन्धमें विशेष तर्क वितर्क करनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है।"



दारोंको दोनों लिपिका ज्ञान आवश्यक होना चाहिये। इसमें कुछ भी कठिनाई नहीं है। अन्तमें जिस लिपिमें अधिक सरलता होगी, उसीकी विजय होगी। भारतवर्षमें परस्पर व्यवहारके लिये एक भाषा होनी चाहिये, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। यदि हम हिन्दी-उर्दू का झगड़ा भूल जायें, तो हम जानते हैं, कि मुसलमान भाइयोंकी तो उर्दूही राष्ट्रीय भाषा है। इस बातसे यह सहजमें सिद्ध होता है, कि हिन्दी या उर्दू मुगलोंके जमानेमें राष्ट्र-भाषा थी।

आज भी भारतमें हिन्दीसे स्पर्द्धा करनेवाली दूसरी कोई भाषा नहीं है। हिन्दी-उर्दू का झगड़ा छोड़नेसे राष्ट्रीयभाषाका सवाल सहज हो जाता है। हिन्दुओंको थोड़े फारसी शब्द जानने पड़ेंगे और मुसलमानोंको संस्कृतके। इस प्रकारके लेन देनसे हिन्दीका बल बेहद बढ़ जायेगा एव हिन्दू मुसलमानोंमें एकता का एक बड़ा साधन हमारे हाथमें आजायेगा। अङ्गरेजी भाषा का मोह दूर करनेके लिये इतना अधिक परिश्रम करना पड़ेगा, कि हमें लाजिम है, हिन्दी उर्दू का झगड़ा न उठायें। लिपिकी तकरार भी हमको न उठानी चाहिये।

अङ्गरेजीभाषा अपूर्ण है। विदेशीय है। उसे सीखनेके लिये बहुतसे युग व्यतीतकर देनेपर भी पूर्णता प्राप्त नहीं होती। एम० ए० और बी० ए० पास ग्रेजूएटोंकी भाषातकमें भूलें रह जाती हैं। अतएव उसे राष्ट्र-भाषाका पद नहीं प्राप्त हो सकता। अङ्गरेजी भाषाका बोझ प्रजाके ऊपर रखनेसे हमारी

महान् हानि होगी। आजकल हमारी शिक्षाका माध्यम अङ्गरेजी होनेसे भारतकी सारी प्रजा कुचल गयी है। भारतीयोंके अङ्गरेजी सीखते जानेसे हिन्दी-भाषा कङ्गली होती जाती है। साथ ही हमारे कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर, विदेशी या विदुषी बीसेण्ट, लोकमान्य तिलक और अन्यान्य प्रतिष्ठित तथा आस-व्यक्ति भी यह बात कई बार कह चुके हैं, कि राष्ट्र भाषाका स्थान एक मात्र हिन्दीको ही प्राप्त हो सकता है। कुछ लोग कहते हैं, जबतक भारतमें स्वराज्य प्राप्त न हो, तबतक राष्ट्र-भाषाके स्थानपर अङ्गरेजीको ही काम करने देना चाहिये। इन लोगोंसे मेरा विनय पूर्वक निवेदन है, कि अङ्गरेजीके इस मोहसे प्रजा बेतरह पीड़ित हो रही है। अब उसे और पीड़ित न करो।

मैं अङ्गरेजीका विद्वेषी नहीं हूँ। अङ्गरेजी भाषा-भाण्डार-से मैंने बहुतसे रत्न ग्रहण किये हैं। लेकिन इन भाषाको उसका उचित स्थान देना एक बात है, उसकी जड़-पूजा करनी दूसरी बात है। फिर अब भारतको पुरातन सभ्यताकी प्रतिष्ठा करनी है, तो हमें अपनी पुरातन जातीय भाषाको ही राष्ट्र भाषाका पद प्रदान करना चाहिये। अतएव हिन्दी भाषाका सीखना स्वराज्य प्राप्ति और उसकी प्रतिष्ठाके लिये समस्त भारतवासियोंके लिये अनिवार्य्य होना चाहिये। एव इस भाषा को सीखकर अपने सारे काम हिन्दीमें ही करने और बोलनेमें भी इसका व्यवहार करनेको प्रतिज्ञा करनी चाहिये।"

* * * *

ग्यारहवाँ अध्याय

हम क्या चाहते हैं ?

युवकने पूछा,—"महात्मन्! हमारे देशमें राजनीतिक सुधार चाहनेवालोंमें दो दल हैं, एक गरम और एक नरम। पर आपकी बातोंको सुनकर मुझे ऐसा मालूम हो रहा है, आप एक तीसरे पक्षकी ही प्रतिष्ठा करना चाहते हैं। क्या इस दलबन्दीसे देशको सुधार-समस्यामें अड़चन न पड़ेगी ?"

महात्माजीने कहा,—"तुम्हारी ऐसी आशङ्का करना व्यर्थ है। मैं तीसरा दल नहीं बनाना चाहता। क्योंकि एक पक्षमें कितने ही आदमी होते हैं, किन्तु उन आदमियोंमें सबके विचार एकसे नहीं होते। यह कौन कह सकता है, कि सभी नरमोंके विचार एक से हैं? जो लोग केवल देश सेवा ही करना चाहते हैं, वे दल बना कर उसी दलके अन्दर कैसे रह सकते हैं? मैं नरमोंकी सेवा करना चाहता हूँ और गरमोंकी भी। जहाँ मेरी राय दोनों दलोंसे भिन्न होगी, वहाँ मैं नम्रताके साथ अपनी सफायी पेश कर दूँगा एवं पूर्ववत् सेवा करता रहूँगा। सफायी पेश करते हुए गरमोंसे कहूँगा, कि मैं जानता हूँ, आप लोग भारतके लिये पूर्ण स्वराज्य चाहते हैं। आपका यह स्वराज्य किसीसे

माँगनेसे न मिलेगा। उसे, देशके प्रत्येक व्यक्तिको अपने पराक्रम द्वारा प्राप्त करना होगा। क्योंकि जो स्वराज्य दूसरों-द्वारा प्राप्त किया जायेगा, वह सच्चा स्वराज्य न होगा, वरन् पर-राज्य होगा। इसलिये यदि आप अङ्गरेजोंके हाथसे शासन-डोर छीनना चाहते हैं अथवा उन्हें निकाल देना चाहते हैं, तो आपकी अभीष्ट सिद्धि हो जानेपर यह कहना नितान्त अनुचित होगा, कि हमने स्वराज्य पा लिया। मैं तुम्हें स्वराज्यका सच्चा रूप दिखा चुका हूँ। उसे हम कभी शस्त्र-बलसे नहीं पा सकते। शस्त्र बल पाशविक बल है और पाशविक बल भारत भूमिकी प्रकृतिके प्रतिकूल है। इसलिये आप लोगोंको केवल आत्मिक बलके भरोसे काम करना होगा। यह स्पष्ट बिल्कुल छोड़ देना चाहिये, कि हमें अपना उद्देश्य सिद्ध करनेके लिये किसी समय शस्त्र बलसे भी काम लेना होगा।

माडरेटोंसे मैं कहूँगा, भाइयों-अपनी उद्देश्य-सिद्धि [illegible] केवल प्रार्थना करना और गिड़गिड़ाना नीचे गिरना है। [illegible] करनेसे हम केवल अपनी निरपता स्वीकार करते हैं। [illegible] कहना, कि "ब्रिटिश राज्यके बिना हमारा काम नहीं [illegible] एक प्रकारसे ईश्वरकी सत्ताको हीन समझना है। [illegible] को छोड़, संसारमें कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है, [illegible] हमारा काम न चल सके। इसके सिवा यह [illegible] बात, कि "इस समय अङ्गरेजोंका यहाँ रहना [illegible] यह कहना उन्हें अपने सिर चढ़ाना है।

यदि अङ्गरेज लोग भारतसे अपना डेरा-डण्डा उठाकर चल दें, तो कोई यह न खयाल करे, कि यह भूमि विधवा हो जायेगी। यह सम्भव है, कि अङ्गरेजोंके रहनेसे जिन लोगोंको जबर्दस्ती दबकर रहना पडता है, वे उनके चले जानेपर लडने लग जायें। किन्तु भडकनेको दबा रखनेसे कोई लाभ नहीं हो सकता। उसे निकल जानेका रास्ता मिलना ही चाहिये। हम लोगोंको शान्तिसे रहनेके लिये, यदि पहले लडना आवश्यक हो, तो अच्छी बात है। आपसके झगडेमें दुर्बलकी रक्षा करनेके लिये तीसरेके कूद पडनेकी कोई आवश्यकता नहीं। इसी "रक्षा"ने तो हमें निर्वीर्य्य कर डाला है। रक्षा, दुर्बलको और भी दुर्बल बना देती है। इस बातको जबतक हम भले प्रकारसे न समझ लेंगे, तबतक हम लोगोंको स्वराज्य नहीं प्राप्त हो सकता। एक अंगरेज पादरीके विचारको मैं अपने शब्दोंमें यों प्रकट करता हूँ, कि सुव्यवस्थित परराज्यकी अपेक्षा स्वराज्यकी अराजकता अच्छी। परन्तु मेरी कल्पनाके अनुसार उस विद्वान् पादरीके स्वराज्यका अर्थ भारतीय स्वराज्यके सम्बन्धमें भिन्न प्रकारका है। हम लोगोंको यह सीखना है, और दूसरोंको सिखाना है, कि हमलोग न अंगरेजी राज्यके अत्याचार चाहते हैं, और न हिन्दुस्थानी राज्यके। यदि इस विचारके साथ अपनी उद्देश्य सिद्धिका काम हो, तो नरम और गरम दोनों दल मिलकर काम कर सकते हैं। परस्परमें डरने या परस्परमें अविश्वास करनेका कोई कारण नहीं है।

यह तो हुई; मेरे मित्रोंके सामने दी हुई सफायी। अब अंग-रेजोंसे भी मेरा निवेदन क्या होगा, उसे सुन लो। मैं अङ्गरेजोंसे नम्रतापूर्वक कहूँगा, यह मैं मानता हूँ, आप लोग हमारे शासक हैं। इस बातको बहस करना फुजूल है, कि आप हमारे ऊपर अपने शस्त्रके बलसे राज्य करते हैं, या हमारे सहयोगसे। आप लोगोंके इस देशमें रहनेसे भी मुझे कोई आपत्ति नहीं। परन्तु आपको शासक होते हुए भी यहाँपर नौकर बनकर रहना होगा। हम लोगोंके लिये यह अभीष्ट नहीं है, कि आप जैसी आज्ञा करें, उसीका पालन करें; वरन् आप लोगोंका यह कर्त्तव्य है, कि जैसा हम चाहें वैसा आप करें। आपलोग जो इस देशसे धन खींच ले गये हैं, उसे आप अपने पासही रखिये, पर आगेसे ऐसा अन्याय न कीजिये। आप लोग चाहें तो अपने इस कर्त्तव्यका पालन करें, कि भारतपर आप लोग पहरा दें। हम लोगोंसे व्यापारका लाभ उठानेकी बात अब ताकमें उठा रखिये। जिस सभ्यताके आप लोग पुष्ट पोषक हैं, उस सभ्यताको हम लोग असभ्यता कहते हैं। हम लोग अपनी प्राचीन सभ्यताको आपकी इस नवीन सभ्यतासे बहुत श्रेष्ठ मानते हैं। यदि इस सत्यको आप लोग अच्छी तरह समझ लेंगे, तो इसमें आपकी भलाई है। यदि नहीं समझेंगे, तो आप लोगोंकी ही कहावतके अनुसार इस देशमें आप लोगोंको उसी प्रकार रहना पड़ेगा, जिस तरह आजकल हम रहते हैं। उस अवस्थामें आप लोग कोई ऐसा काम न करें, जो हमारे धर्मके विरुद्ध हो। आप लोग शासक हैं,

इसमें सन्देह नहीं, कि हम और आप परस्परके सम्बन्धसे यथेच्छ लाभ उठा सकते हैं।

आप लोग जो हिन्दुस्थानमें आये हो, अङ्गरेज-जातिके अच्छे नमूने नहीं हो एवं हम लोग भी, जो आधे अङ्गरेज हो गये हैं, वास्तविक आर्य्य जातिके अच्छे नमूने नहीं हैं। आप लोगोंने यहाँ जो कुछ किया है ; यह सब यदि एक सच्चे अङ्गरेजको मालूम हो जाये तो वह आपकी अनेक बातोंका विरोध करेगा। सर्व साधारण हिन्दुस्तानियोंके साथ आपका बहुतही कम सम्बन्ध रहा, जिसे आप लोग अपनी सभ्यता समझते हैं, उसे छोड़ कर यदि आप अपनेही धर्म-ग्रन्थ देखेंगे,तो आपको मालूम होगा, कि हम लोग जो चाहते हैं, वह न्याय है। हमारी शर्तें मञ्जूर करकेही आप लोग हिन्दुस्थानमें रह सकते हैं और यदि इस तरह रहेंगे, तो हम आपसे बहुतसी बातें सीख सकेंगे। इस प्रकार परस्पर और संसारका बहुत कुछ उपकार हो सकता है। पर यह तभी हो सकता है, जब हमारा आपका सम्बन्ध धर्म भूमिमें जड़ पकड़ ले।"

राष्ट्रसे मेरा निवेदन यह होगा, कि जिन भारत वासियोंमें सच्ची देश भक्ति होगी,वही निडर होकर अङ्गरेजोंसे यह बातें कह सकेंगे। और सच्ची देश-भक्ति उन्हींकी समझी जायेगी, जो अन्तःकरणमें यह विश्वास रखते हैं, कि भारतीय सभ्यताही सर्वोत्तम सभ्यता है एवं यूरोपकी सभ्यता केवल दो दिनका खेल है। ऐसी नकली चमकवाली कई सभ्यताएँ आयीं और गयीं एवं आगे

भी उनका आना जाना लगा रहेगा। सच्ची देशभक्ति उन्हीं-को समझी जायगी, जो अपनी आत्माका बल अनुभव करेंगे और पाशविक बलके सामने साष्टाङ्ग दण्डवत् न करेंगे। साथही कभी किसी हालतमें स्वय इस बलका प्रयोग भी न करेंगे। सच्ची देश-भक्ति उन्हींकी समझी जायेगी, जो वर्त्तमान दु स्थितिसे बिलकुल उकता गये हों और यह समझते हों, कि जहरका प्याला हम लोग बहुत दिनोंतक पी चुके, अब न पीयेंगे।

यदि ऐसा एक भी भारत वासी होगा, तो वह नि सङ्कोच अङ्गरेजोंसे ऐसी बातें करेगा और अङ्गरेजोंको उसकी बातें सुन लेनी पड़ेंगी। ये शर्त्तें, वास्तविक शर्त्तें नहीं हैं, हमारे मनके दर्पण हैं। मांगनेसे कुछ भी न मिलेगा। हम जो चाहते हैं, वह हमें ले लेना होगा और इसके लिये बल प्राप्त करना होगा। और यह बल उसीको प्राप्त होगा, जो अङ्गरेजी भाषाका बहुतही कम प्रयोग करे, यदि कानून पेशा हो, तो अपने उस व्यवसाय को छोड़कर स्वदेशी शिल्पको उन्नति दे। यदि वकील हो, तो अपने लोगों और अङ्गरेजोंको भी अपने ज्ञानसे बुद्धि दे। यदि वकील हो, तो अपने लड़नेवाले दो फरीकोंके बीचमें दखल न दे, बल्कि अदालतकी सीढ़ी चढ़ना छोड़ दे और अपने अनुभवसे दूसरोंको भी इसी रास्तेपर ले आये। यदि वकील हो, तो जज बननेसे इन्कार करे। क्योंकि उसे अपने पेशेको छोड़ देना होगा। यदि डाक्टर हो, तो डाक्टरी करना छोड़दे और यह समझ ले, कि शरीरकी सेवा करनेके बदले, उसे आत्माकी सेवा

समझमें ऐसा प्रश्न करना उचित नहीं, यदि मैं अपने कर्त्तव्यका पालन करता हूँ, अपनी सेवा अपने आप करता हूँ, तब दूसरों को भी कर्त्तव्य पालनके लिये उत्साहित कर सकूँगा। दूसरों की भी सेवा कर सकूँगा। याद रखो, स्वराज्य आत्मशासन है। उसकी प्राप्तिका मार्ग सत्याग्रह है। इस बलसे काम लेने के लिये हर बातमें स्वदेशीकी आवश्यकता है।

जो कुछ हम करना चाहते हैं, वह इसलिये नहीं करें, कि अङ्गरेजोंसे हमारा द्वेष है या उन्हें हम दण्ड देना चाहते हैं, बल्कि इसलिये, कि उसे करना हमारा कर्त्तव्य है। इस प्रकार मान लीजिये, कि यदि अङ्गरेज नमकका कर उठा दें, हमारा रुपया हमें वापस दे दें, हिन्दुस्थानियोंको ऊँचे से-ऊँचे पदपर बैठायें, अङ्गरेजी फौज यहांसे ले जावें, तो भी हम मशीनके बने पदार्थोंका व्यवहार न करेंगे, न अङ्गरेजी भाषाका उपयोग करेंगे और न उनके अनेक उद्योग-धन्धोंसे काम लेंगे। क्योंकि ये चीजें स्वभावत ही हानिकर हैं। इसलिये हमें उनकी आवश्यकताही नहीं है। अङ्गरेजोंसे मेरा कोई द्वेष नहीं है, पर उनकी सभ्यतासे मुझे नितान्त घृणा है।

लोग जितना 'स्वराज्य स्वराज्य' चिल्लाते हैं, उतना उसका सच्चा महत्त्व नहीं समझते। मैं 'स्वराज्य, अपनी प्राचीन सभ्यताको' कहता हूँ और इसी स्वराज्यकी प्रतिष्ठाके लिये मैं अपना उत्सर्ग कर चुका हूँ।"



बारहवाँ अध्याय

वकील, डाक्टर और यन्त्र।

पाठकने पूछा,—"महाराज! आपने अपने इस भाषणमें और पहले भाषणोंमें भी, वकील, डाक्टर और यन्त्रोंकी बड़ी निन्दा की है! क्या इन सबसे सिवा अपकारके उपकार होताही नहीं!"

महात्माजी बोले,—"निःसन्देह! मेरा दृढ़ विश्वास है, कि वकीलोंनेही हिन्दुस्थानको गुलाम बनाया। हिन्दू और मुसलमानोंके झगड़े इन्हीं लोगोंने बढ़ाये एवं इन्हींने अङ्गरेज राज्यकी जड़ जमायी है।

उदाहरणके लिये मान लीजिये, कि किसी बातपर हिन्दू और मुसलमानोंमें झगड़ा हुआ। साधारण आदमी उन्हें यही सलाह देगा, कि चलो, जो हुआ सो हुआ, अब उसे भूल जाओ। आगे कभी आपसमें न झगड़ना और दो भाइयोंकी तरह मिलकर रहना। पर जब वे दोनों, वकीलके पास पहुँचे, तब वकीलने अपने टकोंके लिये दावेकी मजबूतीपर निगाह रखकर ऐसी बातें ढूंढ निकालीं, जिन्हें बेचारा मुवक्किल जानता भी नहीं। सारांश यह है, कि वकील लोग झगड़ेको घटानेकी जगह बढ़ायाही करते हैं। मैं अपने अनुभवसे जानता हूँ, कि जब लोग आपसमें लड़ते हैं, तब

वकीलोंको प्रसन्नता होती है। वे लोग जोंककी तरह गरीबोंका खून चूसा करते हैं। इनके कारण कितनेही घरोंका तन्त्रा तमाम हो गया है। इन्होंने कितनेही सगे भाइयोंको एक दूसरेके खूनका प्यासा बना दिया। सबसे बड़ी हानि जो इन्होंने की है, वह यह कि, इन्होंने अङ्गरेजी राज्यके जालको और मजबूत कर दिया है। यह समझना बिलकुल गलत है, कि सरकारने अदालतें प्रजाके फायदेके लिये बनायी है। जो लोग भारतमें अपना दखल जमाये रखना चाहते हैं, वे लोग अदालतों द्वाराही अपनी मनोरथ सिद्धि करते हैं।

हम और आप झगड़ें, और झगड़ा निपटानेके लिये गांठका पैसा स्वाहा कर तीसरेको बुलायें, क्या यह हमारी मूर्खता नहीं है? हम लोग अपनी जहालतसे यह समझ लेते हैं, कि तीसरा आदमी भी रुपया लेकर बदलेमें हमको न्याय देता है।

सच्ची बात यह है, कि वकीलोंके बिना अदालतें चल नहीं सकती और अदालतोंके बिना अँगरेज लोग राज्य ही नहीं कर सकते। अगर वकील अपना पेशा छोड़ दें और इस पेशेको वेश्याके पेशेकी तरह घृणासे देखने लगें, तो अनति विलम्ब भारत अँगरेजोंसे खाली हो जाये। वकील, जज, बैरिष्टर और मुख्तार, ये सभी भयानक जीव हैं। सभी अँगरेजों के अस्त्र है।

डाक्टरोंने भी हम लोगोंका सत्यानाश किया है। हम लोग बड़ानक्सा डाक्टर बनते हैं। अँगरेजीके एक विद्वान्ने एक

वृक्षकी कल्पना की है। उसमें वकील, डाक्टर आदि निरुपयोगी व्यवसायवालोंको उसकी डालियाँ बताया है। उसकी जड़पर नीति धर्म रूपी कुल्हाड़ी रखी है। अर्थात् इन सब व्यवसायोंकी जड़ सिद्ध की गयी है। इससे आप समझ सकते हैं, कि मैं जो कुछ तुमसे कहता हूँ, यह मेरा ही मत नहीं है, परन्तु अनेक [illegible] फल है। जिस तरह आजकल [illegible] उसी तरह एक दिन [illegible] ये लोग देशको यही

उनका नाश करा देते हैं। इससे बदमाशीको उत्तजन मिल गया। यदि अज्ञान वश मैं कोई पाप करूँ और रोग द्वारा मुझे उसका दण्ड मिल जाये, तो मैं भविष्यमें उससे सावधान रह सकता हूँ। पर डाकृर साहबने मुझे सावधान होनेके कामसे बरी कर दिया। यद्यपि डाकृरकी सहायतासे मेरे शरीरको आराम मिल गया, पर मेरे मनमें दुर्बलता आ घुसी। तदनुसार कुछ समय तक ऐसा होते रहनेके कारण अपने मनपर मेरा कुछ भी अधिकार न रह जायेगा।

दवाखाने और अस्पताल पापके मूल हैं। इनके मौजूद रहनेकी वजहसे लोग शरीरकी रक्षासे उदासीन हो गये हैं और जीवन भर अनीतिकी वृद्धि करते रहते हैं।

यूरोपियन डाकृर तो हद ही किये डालते हैं। शरीरकी मसनुही रक्षाके लिये वे हरसाल लाखों प्राणियोंका सहार करते हैं। प्रयोगके बहाने जीवित प्राणियोंका अंग-च्छेद करते हैं। यह कर्म किसी धर्ममें मान्य नहीं है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी आदि सभी धर्मोंका यह कथन है, कि एक शरीरकी रक्षाके लिये इतने प्राणियोंकी हत्या नहीं होनी।

डाकृर हमको धर्म भ्रष्ट करते हैं। उनकी अनेक दवाओंमें चर्बी और शराब पड़ी होती है। इनको हिन्दू और मुसलमान दोनों हराम समझते हैं। ऐसी दवाओंके संसर्गसे हमारी धार्मिकता क्षीण होती है। लोग धन और इज्जतके लोभसे

होते हैं। उनकी दवाओंके दाम तो कुछ पैसे ही होते हैं, किन्तु लोगोंसे वसूल करते हैं रुपये। धोकेमें डालनेवाले ऐसे डाकृरोंसे वे नीम हकीम ही अच्छे, जिन्हे लोग पहचान तो लेते हैं। अतएव भारतको दरिद्र और उच्छृङ्खल बनानेवाले डाकृरोंसे सदा बचना चाहिये।

अब यन्त्रोंकी बात सुन लीजिये। यन्त्रों द्वारा भारतका बहुत कुछ अनिष्ट हुआ है। मैंचेष्टरने हमको जो हानि पहुँचायी है, वह निःसीम है। भारतीय कला कौशलके लुप्तप्राय होनेका कारण एक मात्र मैंचेष्टर ही है।

पर मैं भूलता हूँ। मैंचेष्टरको दोष देना वृथा है, क्योंकि जब हम उससे वस्त्र खरीदने लगे, तभी न उसे यहांपर अपना बनाया वस्त्र भेजनेकी दरकार हुई? सन् १९०७ में बंगालमें स्वदेशीका प्रचार होनेकी बात सुनकर मुझे परमानन्द हुआ था। बङ्गालमें कपड़ेकी मिलें न होनेके कारण उन लोगोंने अपना पुराना व्यवसाय फिर आरम्भ किया। बङ्गाली लोग, बम्बईकी मिलोंको उत्तेजन देते हैं, पर यह बात उचित नहीं है। यदि वे यन्त्रोंका बहिष्कार कर देते, तो बहुत ही अच्छा होता। यन्त्रोंकी बदौलत वलायत क्या सारा यूरोप उजड़ा जा रहा है। एवं वही तूफानी झटका अब भारतको भी लगना शुरू हुआ है। यन्त्र या कलें पाश्चात्य सभ्यताके मुख्य चिह्न हैं और स्पष्ट महापाप देख रहा हूँ।

बम्बईकी मिलोंमें काम ... ाले

को पहुँच गये हैं। वहाँकी स्त्रियोंकी दयनीय दशा देखकर भी पथरीले नेत्रोंमें आँसू भर आते हैं। जब भारतमें 'काटन मिल्स' का जन्म न हुआ था—जब कपड़ा तय्यार करनेवाली कम्पनियाँ स्थापित न हुई थीं, तब भी उक्त मजदूर और स्त्रियोंका पेट भरताही था। इन कम्पनियोंकी वृद्धिसे भारत बड़ी ही हीन दशाको पहुँच जायेगा। मेरे इस कथनमें कठोरता और अत्युक्ति मालूम हो सकती है; पर मैं यह कहनेके लिये बाध्य हूँ, कि भारतमें मिलोंकी सख्या बढ़ानेकी अपेक्षा मैंचेष्टरको धन भेजकर वहाँके सड़े गले और कमजोर कपड़े पहनना ही अधिक श्रेष्ठ है। क्योंकि उसके कपड़े पहननेसे केवल धनही बाहर जायेगा, किन्तु इन कलोंकी कृपासे जो हमारे देशका रक्त चूसा जाता है, वह तो बचेगा। भारतमें कलोंका प्रचार होनेसे हम नीति-भ्रष्ट हो जायेंगे। मिलोंमें काम करनेवालोंकी नीतिकी क्या दशा है, यह उन्हींसे पूछियेगा। मिलोंकी बदौलत जो लोग करोड़ पति बने बैठे हैं, उनकी नीति औरोंसे अच्छी नहीं हो सकती। अमेरिकाके राकफेलरकी अपेक्षा भारतीय राकफेलरोंको घटिया मानना मूर्खता है। निर्धन भारतके लिये कुछ न-कुछ मुक्तिकी आशा है; पर अनीतिसे भरे हुए, श्रीमान् भारतके लिये कुछ भी आशा नहीं है। पैसा मनुष्यको नीच बना देता है। इसके जोड़की दूसरी वस्तु विषयासक्ति है। इन दोनोंका दर्शन सर्प दर्शनसे भी अधिक भयङ्कर होता है। साँपका डसना शरीरकी बलि लेकर ही शान्त हो जाता है, परन्तु

धन या विषयासक्तिका दशन शरीर, प्राण और मन सब कुछ लेकर भी पीछा नहीं छोड़ता। इसलिये देशमें मिलोंकी संख्या बढ़ानेसे आनन्दित होना व्यर्थ है।

यहाँ, लोग मुझसे ऐसा प्रश्न कर सकते हैं, कि जो मिलें अबतक स्थापित हो चुकी हैं, क्या वे बन्द कर दी जायें? मेरी समझमें ऐसा होना कठिन है; क्योंकि जो वस्तु एक बार जड़ पकड़ जाती है, उसे उखाड़ फेंकना कठिन होता है। इसी लिये कार्य्यके अनारम्भको ही बुद्धिमत्ताका पहला लक्षण कहा गया है। मिलोंके मालिकोंको हम तिरस्कारकी दृष्टिसे नहीं देख सकते, हमें उनपर दया दिखानी चाहिये। यह असम्भव है, कि वे एकाएक सारी मिलें बन्द कर दें। पर हम उनसे यह प्रार्थना कर सकते हैं, कि वे अपने हौंसले अधिक न बढ़ायें। यदि उन्होंने अपना कारोबार धीरे धीरे घटानेका निश्चय कर दिया, तब तो भलाई है। वे स्वयं ही हमारे पुराने और पवित्र चरखेको फिर घर घरमें स्थापित करा सकते और लोगोंके बुने हुए कपड़े लेकर बेच सकते हैं। यदि उन्हें यह बात स्वीकार न हो, तो साधारण लोगोंका कर्त्तव्य है, कि वे यन्त्रोंसे बने हुए वस्त्रों तथा अन्यान्य वस्तुओंका बहिष्कार कर दें।

लोग कहेंगे, एक कल द्वारा बुने गये वस्त्रोंका बहिष्कार किया जा सकता है, पर सुई, दियासलाई आदि और भी ऐसी कितनी ही वस्तुएं हैं, जो बिना कलके तैयार ही नहीं होतीं। उनके लिये क्या प्रबन्ध होगा? उत्तरमें मेरा निवेदन है कि जिस समय

वे सारी वस्तुएँ यन्त्रोंसे नहीं बनती थीं, उस समय भारतका काम किस प्रकार चलता था? जैसे पहले चलता था, वैसे ही आज भी चलाइये। जबतक हाथसे सुई नहीं बनायी जा सकती, तबतक उसके बिनाही काम चलाइये। झाड-फानूस और लेम्पोंको छुट्टी दे दीजिये और मट्टीके दीपकमें रूईकी बत्ती और सरसोंका तेल डालकर रात्रिमें काम चलाइयेगा। इससे आँख और पैसे दोनोंकी रक्षा होगी। हम स्वदेशी रहें, स्वदेशी हों और स्वराज्यका जय-जयकार करें।

ये सारी बातें लोग एकही दिनमें करने लगें या एकही साथ बहुतसे मनुष्य सम्पूर्ण यान्त्रिक वस्तुओंका परित्याग कर दें, यह असम्भव है। पर यदि यह विचार ठीक है, तो हमें निरन्तर उसकी पूर्त्तिमें लगे रहना चाहिये। दो दो, एक-एक वस्तुओंका परित्याग करते जाना चाहिये। इसे देखकर और लोग भी हमारा अनुकरण करेंगे। पहले इस विचारके दृढ़ मूल होनेकी आवश्यकता है। पीछे तदनुसार कार्य्य होने लगेगा। पहले एक ही व्यक्ति करेगा, बादको दस और सौ मनुष्य करेंगे, एव इसी तरह क्रमशः यह संख्या बढ़ती जायेगी। बड़े लोग जो काम करते हैं, वही छोटे लोग भी करते हैं और करेंगे। मनमें बैठ जाये, तो बात बड़ी सहज और छोटीसी है। दूसरेके आरम्भ करनेतक प्रतीक्षा करते रहना अनावश्यक है। किसी बातके औचित्यका निश्चय होते ही, हमें उसे करने लगना चाहिये। समझ बूझकर भी न करनेवाला दम्भी कहलाता है। मेरे कहनेका साराश यही

हैं, कि यन्त्र मात्र साँपके बिलकी तरह हैं। जिस तरह उसमेंसे एक साँपके बाहर निकलते ही दूसरा झाँकने लगता है, उसी प्रकार यन्त्र भी एकके बाद एक निकलते ही जाते हैं। जहाँ यन्त्र हैं, वहाँ बड़े शहर हैं, जहाँ बड़े शहर हैं, वहाँ यन्त्र हैं। जो लोग इङ्गलेण्ड गये हैं, वे जानते हैं, कि विलायत जैसे आधुनिक सभ्यताके केन्द्रके ग्रामोंमें बिजली और ट्रामोंका उपयोग नहीं होता, ईमान्दार वैद्य और डाक्टर आपको बता सकते हैं, कि किसी स्थानमें रेल ट्राम आदि साधनोंकी वृद्धि होते ही लोगोंका स्वास्थ्य बिगड़ने लगता है। मुझे स्मरण है, कि एक शहरमें जब पैसेकी किल्लत हुई और ट्राम, रेल, डाक्टर तथा वकीलोंकी आमदनी घट गयी, तब नगरका स्वास्थ्य अच्छा हो गया। यन्त्र निर्गुण हैं, उनके अवगुणोंपर मैं एक बडासा पोथा लिख सकता हूँ। मशीनें बहुत बुरी चीज हैं। यदि आप इसे बुरा समझकर धीरे धीरे इसका परित्याग करते जाइयेगा, तो इनका नाश अनति विलम्ब अवश्य होगा।"

* * * *



भोगोंको भोगनेका हमें कुछ भी अधिकार नहीं है। अन्य जाति वालोंके साथ हमारा रोटी-बेटीका सम्बन्ध नहीं हो सकता। इस योजनासे अनाचारमें कमी होनेकी बहुत अधिक सम्भावना है। सह-भोजसे एकता बढ़ती है, यह बात अनुभवके विरुद्ध है। यदि सहभोजसे मित्रता बढ़ती होती, तो यूरोपकी जातियाँ परस्परमें कभी न लड़तीं, महायुद्धोंका कभी अनुष्ठान न होता। सबसे अधिक झगड़े तो परस्पर-सम्बन्धी व्यक्तियोंमें ही होते हैं। हम लोगोंने भोजनको व्यर्थ ही इतना महत्व दिया है। सच पूछिये, तो भोजनकी क्रिया उतनी ही गन्दी है, जितनी शौच-क्रिया। अन्तर केवल इतना ही है, कि शौच-क्रियाके अनन्तर हमें शान्ति मिलती है और भोजनके बाद बेचैनी मालूम होती है। जिस प्रकार हमलोग शौचादिकी क्रियाएँ एकान्तमें करते हैं, उसी प्रकार भोजन आदि पशु-क्रियाएँ भी हमें एकान्तमें ही करनी चाहिये। यदि यह वाक्य सत्य है, कि "भोजन केवल शरीर चलानेके लिये है, तो स्पष्ट है, कि इस सम्बन्धमें जितना कम आडम्बर किया जाये, उतना ही अच्छा है।

जो बात भोजन की है, वही बात विवाह सम्बन्धकी भी है। जाति-विशेषका बाहरवालोंसे विवाह-सम्बन्ध न करना संयम ही है। एवं यह संयम सभी कालमें सुख-दायक है। सम्बन्धके जालको जितनाही फैलाइये, उतना संकट बढ़ता जाता है। इसलिये अपनी ही पाँक्तिके मनुष्योंमें वर या वधू ढूँढनेमें मैं कोई दोष नहीं देखता। इङ्गलेण्डके "ब्लू-ब्लड" या

मेल रक्खा भी यही रहस्य है। लार्ड सालिसबरी अपनी
वंश-परम्परा पार्लियामेण्ट तक चले आते थे। इस बातका उन्हें
और ब्रिटिश जनता दोनोंको अभिमान था।

इस प्रकार भोजन और विवाह सम्बन्धी बन्धन साधारणतः
प्रशंसनीय है। इसमें अपवाद भी और ये अपवाद हैं आजकल
है तथा भविष्यमें भी रहेंगे। यह बात हिन्दू समाजको जाने
या बिना जाने स्वीकार है। परन्तु वास्तवमें इनमें कोई अप-
वाद नहीं है। मैंने भंगीके साथ भोजन किया और अपने वि-
चारानुसार इसीमें विशेष संयम समझा, तो इस बारेमें जाति-
का कोई कर्त्तव्य नहीं है। अथवा अपनी जातिमें अपने योग्य
ध न देखकर तथा अविवाहित रहनेमें विषय लम्पट हो
नेकी सम्भावना जानकर यदि मैं किसी और जाति
अपने योग्य कन्यासे विवाह कर लूं तो इसमें भी संयम
ा और इसलिये मेरा इस कार्यके कारण जाति भेदके
तत्वोंसे विरोध नहीं होता। पर इस कार्यमें साधारण
था अपवाद है। मेरा उद्देश्य इन्द्रिय दमन था; उसे
करनेका दायित्व—साबित करनेकी जिम्मेदारी—मुझपर है
रे भविष्यत्‌के आचरण उसे सिद्ध करेंगे। परन्तु जातिके
अधिकार मुझे न मिलें, तो भी मुझे सन्तुष्ट रहकर जाति-
अपने कर्त्तव्योंका पालन करते रहना चाहिये। भोजन
वाह सम्बन्धी लाभोंके अतिरिक्त जाति-भेदसे और भी
लाभ है। प्राथमिक शिक्षाका साधन तैयार

है। प्रत्येक जाति अपनी जातिकी शिक्षाकी व्यवस्था करेगी। स्वराज्य सभाके निर्वाचनका भी साधन उसमें मौजूद है। प्रत्येक प्रतिष्ठित जाति अपने प्रतिनिधि निर्वाचित करेगी। झगड़े निपटानेके लिये पंचायती अदालतें भी हाजिर हैं। हरएक जाति अपने अपने झगड़े निपटा ले। यदि युद्धके लिये सेना खड़ा करनी हो, तो जितनी जातियाँ हों, उतने डिवीजन हमारे पास तयार हैं। जाति भेदकी जड़ भारतमें इतनी गहराईको पहुँच गयी है, कि उसे उखाड़नेकी अपेक्षा उसीमें सुधार करनेका प्रयत्न करना प्रशंसनीय जान पड़ता है। कुछ लोग कह सकते हैं, कि जाति भेद सम्बन्धी पूर्वोक्त बातोंको सत्य माननेसे जाति भेदकी जितनी वृद्धि हो, उसे उतनाही अच्छा कहना पड़ेगा और ऐसा होनेसे १०—१० मनुष्योंकी एक जाति बन जायेगी। इस विचारमें विशेष तत्व नहीं है। जातिकी उत्पत्ति अथवा नाश, व्यक्ति अथवा समूह विशेषकी इच्छापर अवलम्बित नहीं है। उसकी उत्पत्ति, उसका नाश तथा उसका संस्कार हिन्दू समाजके आवश्यकतानुसार हुआ है और यह अब भी होता है। हिन्दू-जाति जड़ या निर्जीव संस्था नहीं है। वह जीवित संस्था है और अपनेही नियमके अनुसार अपना काम कर रही है। आज दुर्दैववश उसमें आडम्बर, ढोंग, विषय लम्पटता, कलह आदि दोष देख पड़ते हैं। पर इससे लोगोंमें चरित्र-बलका अभाव मात्र सिद्ध होता है। यह जाति-भेद योजनाको दोष पूर्ण नहीं सिद्ध कर सकता।

आडम्बर और ढोंगोंमें अस्पृश्यताका ढोंग अमान्य है। लोग कहते हैं, यह धर्मांश है। किन्तु धर्म सम्बन्धी बातोंमें मैं अपने-आपको बालक नहीं, वरन् खासा ४० वर्षका तत्त्वविचार समझता हूँ। क्योंकि इतने वर्ष मैंने धर्म विषयका विचार और मनन किया है। विशेषकर मुझे जहाँ जहाँ सत्य देख पड़ा, वहाँ वहाँ मैंने उसे कार्य्यमें परिणत किया। मेरी धारणा है, कि निरे शास्त्राभ्याससे धर्मका स्वरूप उपलब्ध नहीं होता। हम सदाही देखते हैं, कि यम-नियमोंके पालनके बिना—शास्त्र पाठके बिना—मनुष्य मनमाने मार्गसे चलने लगता है। मैं ऐसे मनुष्यसे शास्त्रका अर्थ न पूछूँगा, जिसने लोगोंमें पण्डित कहानेके लिये शास्त्र पढ़े हैं। इसी तरह मोक्षमूलर जैसे महा पण्डितोंने अपने विकट अध्ययनके अनन्तर जो पुस्तकें लिखी हैं, उनसे भी मैं आचरण सम्बन्धी नियम बनानेमें सहायता न लूँगा। आजकल अपनेको शास्त्र ज्ञानी प्रकट करनेवाले बहुतेरे लोग अज्ञानी और दम्भीही पाये जाते हैं। मैं धर्म गुरुकी खोजमें हूँ। गुरुकी आवश्यकता है, यह मैं मानता हूँ। परन्तु जबतक मुझे कोई योग्य गुरु न देख पड़े, तबतक मैं अपने-आपकोही अपना गुरु मानता हूँ। यह मार्ग विकट अवश्य है, परन्तु आजकलके इस विषमकालमें यही योग्य जान पड़ता है। हिन्दू धर्म इतना महान् और व्यापक है, कि आजतक कोई उसकी व्याख्या करनेमें सफल कार्य्य नहीं हो सका। मेरा जन्म वैष्णव-सम्प्रदायमें हुआ है और इसके सिद्धान्त मुझे बड़ेही प्रिय हैं। वैष्णव धर्ममें

अथवा हिन्दू धर्ममें मुझे कहीं यह विधान नहीं मिला, कि भंगी, डोम और चमार आदि जातियाँ अस्पृश्य हैं। हिन्दू-धर्म आज कल अनेक रूढियोंका घर बना हुआ है। उनमेंसे कुछ रूढियाँ प्रशंसनीय हैं, और बाकी निन्दनीय। उन निन्दनीय रूढियोंमेंसे अस्पृश्यताकी रूढी सर्वथा निकृष्ट है। इसकी बदौलत दोहजार वर्षों से, हिन्दू धर्मपर धर्मके नामसे पापकी राशि लादी जारही है और अब भी लादी जाती है। मैं रूढीको ढोंग, पाखण्ड और आडम्बर कहता हूँ। इस पाखण्डसे हिन्दुओंको मुक्त होना पडेगा और इसका प्रायश्चित्त तो आप करही रहे हैं। इस रूढीके समर्थनमें मनुस्मृति आदि धर्म-ग्रन्थोंके श्लोक प्रक्षिप्त हैं। कितनेही श्लोक एकदम प्रयोजन शून्य हैं। आजकल मनुस्मृति, कोरे विरोधियोंको चुप या बाध्य करनेके काममेंही लायी जाती है; अन्यथा उसकी प्रत्येक आज्ञाके अनुसार चलनेवाला मुझे आज एकभी हिन्दू नहीं दीखता। लोग धर्म-ग्रन्थोंमें तनिक भी आस्था नहीं रखते न उन्हें उनसे कुछ प्रेमही रहा है। यदि वे समस्त धर्मग्रन्थोंका नित्य पारायण और उनपर मनन करें तो उन्हें असल और नकल, मूल और प्रक्षिप्तका आसानीसे पता लग सकता है। वैसे यह सिद्ध कर देना अति सहज है, कि अमुक काम करनेवाला भ्रष्ट है, पतित है। धर्म ग्रन्थोंमें मुद्रित प्रत्येक श्लोकका समर्थन कर देनेसे सनातन धर्मकी रक्षा न होगी; बल्कि उनमें प्रतिपादित त्रिकालाबाधित तत्वोंको कार्य्यमें परिणत करनेसेही उनकी रक्षा होगी। जिन जिन

धार्मिक नेताओंसे इस विषयमें संभाषण करनेका मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है, सबने इसी बातको स्वीकार किया है। उन धर्म-प्रचारकोंने, जिनकी गणना विद्वानोंमें है और जो समाजमें पूज्य माने जाते हैं, स्पष्ट कह दिया, कि भंगी, डोमादिके साथ हम लोग जैसा बर्त्ताव करते हैं, उसका इसके सिवा और कोई आधार नहीं, कि वैसी रूढ़ी या प्रथा चल गयी है।

सच पूछिये, तो इस रूढ़ीका कोई पालन भी नहीं करता। रेलमें उनका स्पर्श होता है। मिलोंमें उनसे काम लिया जाता है। हम उन्हें बेधड़क छूते हैं। पर्गुसन तथा बड़ोदा कालेजोंमें अन्त्यज प्रविष्ट किये गये हैं। इन सब बातोंमें समाज बाधा नहीं डालता। अंगरेजों और मुसलमानोंके घरोंमें उनका सत्कार किया जाता है। तिसपर मजा यह, कि अंगरेजों और मुसलमानोंके छूनेमें हमें कोई एतराज नहीं। बल्कि इनमेंसे कितने-एकके साथ हाथ मिलानेमें तो हम उल्टा गौरव समझते हैं। ईसाई धर्म ग्रहण कर लेनेपर इन्हीं अन्त्यजोंको हमें अछूत माननेका साहस नहीं होता। इस प्रकार जिस रूढ़ीका पालन करना असम्भव है, उसका समर्थन कोई समझदार हिन्दू, अपना व्यक्तिगत-मत भिन्न होनेपर भी नहीं कर सकता।

अस्पृश्यताकी भावनामें घृणाका अन्तर्भाव माननेसे इन्कार करनेवालोंके लिये तो कोई विशेषणही मेरे ध्यानमें नहीं आता। यदि भूलसे कोई हमारे डब्बेमें सवार हो जाये, तो बेचारा पिटे बिना नहीं रह सकता और गालियोंकी तो उसपर मानो, वर्षाही

होने लगेगी। चायवाला चाय, और दूकानदार कोई सौदा उसके हाथ बेचना पसन्द नहीं करता। यदि वह मारे कष्टके मर रहा हो, तो भी हम उसको छूना नहीं चाहते। हम उसे अपना जूठा खानेको और फटे मैले कपड़े पहननेको देते हैं। कोई भी हिन्दू उसे पढ़ानेके लिये तय्यार नहीं होता। हमारी समझमें उसे अच्छे मकानोंमें नहीं रहना चाहिये। हमारे भयसे उसे रास्तोंमें अपनी अस्पृश्यताकी बारबार—गलेमें घण्टा डालकर—घोषणा करनी चाहिये। इससे बढ़कर घृणा सूचक व्यवहार और क्या हो सकता है? उनकी दशासे कौनसी सूचना मिलती है। जिस तरह यूरोपमें किसी समय धर्मकी ओटमें गुलामी प्रथाकी तरफदारीकी जाती थी, उसी तरह आज हमारे समाजमें भी धर्मके नामपर अन्त्यजोंके प्रति घृणा-भावकी रक्षा की जाती है। यूरोपमें भी अन्त समयतक ऐसे कुछ न कुछ लोग निकलतेही आये, जो बाईबिलके वचन उद्धृत करके गुलामीकी प्रथाका समर्थन करते थे। अपने यहांके वर्तमान रूढ़ीकी हिमायत लेनेवालोंको भी मैं उसी श्रेणीमें समझता हूँ। हमें अस्पृश्यताकी कल्पनाका दोष, धर्मसे अवश्य दूर कर देना होगा। इसके बिना प्लेग, हैजे आदि रोगोंकी जड़ नहीं कट सकती। अन्त्यजोंके धन्धोंमें नीचताकी कोई बात नहीं है। डाक्टर और हमारी माताएँ वैसेही काम करती हैं। जब आप उनको छू सकते हैं, तब, अन्त्यजोंके छूनेमें भी मैं कोई दोष नहीं समझता। आप कह सकते हैं, कि डाक्टर और हमारे

घरोंकी माताएं निरन्तर यह काम नहीं करतीं, वे रोगी या बेटेका मल उठाकर फिर स्वच्छ हो जाती हैं। अच्छा, यदि भंगी आदि यह बात नहीं करते, तो दोष उनका नहीं, सोलह आना हमाराही है। यह स्पष्ट है, कि जिस समय हम प्रेम पूर्वक उनका आलिंगन करने लग जायेंगे, उस समय वे स्वच्छ रहना अवश्यही सीख लेंगे।

सहभोज आदि आन्दोलनोंकी तरह इस आन्दोलनको धक्का देनेकी आवश्यकता नहीं है। इस आन्दोलनसे वर्णाश्रम धर्मका लोप नहीं हो सकता। इसका उद्देश्य उसकी अतिरिक्तता या ज़ियादतीको निकाल कर उसकी रक्षा करना है। इस आन्दोलनके पुरस्कर्त्ताओंकी यह भी इच्छा नहीं है कि भंगी आदि अपने काम छोड़ दें। किन्तु उनको यह दिखा देना है, कि मल और गन्दगी साफ करनेका उद्यम आवश्यक और प्रयोजनीय है। उसे एक भंगीही क्या यदि वैष्णव भी करे, तो [redacted] उसमें कोई बुराई नहीं दिखता। इस धन्धेको करनेवाले नीच नहीं, वरन् दूसरे पेशेवालोंके समान सामाजिक अधिकारके समान पात्र हैं। उनका पेशा या उद्यम कितनेही रोगोंसे देशकी रक्षा करता है। अतएव वे डाक्टरके समान आदरणीय हैं।

यह देश तपश्चर्य्या, पवित्रता, दया आदिके कारण जिस प्रकार सबके लिये वंदनीय है, उसी प्रकार स्वेच्छाचार, पाप, क्रूरता आदि दुर्गुणोंका भी क्रीडास्थल बना हुआ है। ऐसे समयमें आपके लेखक समुदाय या उपदेशक समाजके पाखण्डका विरोध

कर उसकी जड समाजसे काट देनेके लिये परिकर-वद्ध होनेमेंही शोभा है। आपसे मेरी प्रार्थना है, कि सब लोग ऐसा करें, जिससे देशके छ करोड भाई सदा अपनेही बने रहें। ईसाई आदि विधर्मियोंके चङ्गुलोंमें फँसकर गैर न बन जायँ।

मैं पक्का वैष्णव हूँ। इस आन्दोलनमें शामिल होनेके पहले मैंने अपने धार्मिक उत्तर दायित्वको भले प्रकारसे सोच समझ लिया है। एक समालोचकने यह भविष्यद्वाणी की है, कि गांधीके विचार बदल जायेंगे। इस सम्बन्धमें मुझे इतनाही कहना है, कि यदि कभी वैसा समय आयेगा, तो उसके पहले मैं हिन्दू धर्मका नहीं, सांसारिक धम-मात्रका त्याग कर चुकूँगा। परन्तु मेरी यह दृढ धारणा है, कि हिन्दू धर्मको पूर्वोक्त कलंकसे मुक्त करनेमें यदि अपना शरीर भी देना पडे, तो भी कुछ डरकी बात नहीं है। जिस धर्ममें नरसी महात्मा जैसे समदर्शी भगवद्भक्त होगये हैं, उसमें अस्पृश्यताकी भावना रह सके, यह कदापि सम्भव नही है।"

* * *



चौदहवाँ अध्याय

धर्म और नीतिका महत्व

शुभ्रयकने पूछा—"महाराज! आपके उपदेशोंको सुनकर मेरी तो यह दृढ़ धारणा हो गयी है, कि संसारका प्रत्येक कार्य्य धर्मानुमोदित होना चाहिये, पर मेरे यहाँके अनेक नव्यसमाजी, नव्य शिक्षित और नव्य सभ्य यह कहा करते हैं, कि यदि हमारे यहाँ पद पदपर धर्मके बन्धन आकर बाधा न पहुँचाया करते, तो हमारे देशकी अभूतपूर्व उन्नति हो सकती थी। संसारमें जितने प्रकारके भी धर्म देखे जाते हैं, वे सब ढोंगमात्र हैं। नीतिसे उनका कोई भी सम्बन्ध नहीं है। फिर सोचते यह हैं, कि संसारमें सर्वाधिक आवश्यकता स्वार्थकी ही है, धर्मकी तनिक भी आवश्यकता नहीं। क्या उनका यह कहना ठीक है?"

महात्माजीने कहा,—"देखो भाई! ये बातें कुछ पाषण्डियोंकी नास्तिकताके फल हैं। ऐसे लोग धर्मकी महत्ताको न समझकर उनके बहिरंगपरही विचार किया करते हैं। यहाँ मैं तुम्हें धर्म और नीतिके समवाय सम्बन्धका दिग दर्शन कराता हूँ। देखो —

यह हमारी नीतिका फल है, जिससे हम अच्छे विचारोंपर आ सकें। दुनियाके साधारण शास्त्र बतलाते हैं, कि दुनिया

कर उसकी जड़ समाजसे काट देनेके लिये परिकर-बद्ध होनेमेंही शोभा है। आपसे मेरी प्रार्थना है, कि सब लोग ऐसा करें, जिससे देशके छ करोड़ भाई सदा अपनेही बने रहें। ईसाई आदि विधर्मियोंके चङ्गुलोंमें फँसकर गैर न बन जायें।

मैं पक्का वैष्णव हूँ। इस आन्दोलनमें शामिल होनेके पहले मैंने अपने धार्मिक उत्तर दायित्वको भले प्रकारसे सोच समझ लिया है। एक समालोचकने यह भविष्यद्वाणी की है, कि गाँधीके विचार बदल जायेंगे। इस सम्बन्धमें मुझे इतनाही कहना है, कि यदि कभी वैसा समय आयेगा, तो उसके पहले मैं हिन्दू धर्मका नहीं, सांसारिक धर्म-मात्रका त्याग कर चुकूँगा। परन्तु मेरी यह दृढ धारणा है, कि हिन्दू धर्मको पूर्वोक्त कलङ्कसे मुक्त करनेमें यदि अपना शरीर भी देना पड़े, तो भी कुछ डरकी बात नहीं है। जिस धर्ममें नरसी महात्मा जैसे समदर्शी भगवद्भक्त होगये हैं, उसमें अस्पृश्यताकी भावना रह सके, यह कदापि सम्भव नहीं है।"

* * * *



चौदहवाँ अध्याय

धर्म और नीतिका महत्व

साधकने पूछा—"महाराज! आपके उपदेशोंको सुनकर मेरी तो यह दृढ़ धारणा हो गयी है, कि संसारका प्रत्येक कार्य्य धर्मानुमोदित होना चाहिये, पर मेरे यहांके अनेक नव्यसमाजी, नव्य शिक्षित और नव्य सभ्य यह कहा करते हैं कि यदि हमारे यहाँ पद पदपर धर्मके बन्धन आकर बाधा न पहुँचाया करते, तो हमारे देशकी अभूतपूर्व उन्नति हो सकती थी। संसारमें जितने प्रकारके भी धर्म देखे जाते हैं, वे सब ढोंगमात्र हैं। नीतिसे उनका कोई भी सम्बन्ध नहीं है। फिर सोचते यह हैं, कि संसारमें सर्वाधिक आवश्यकता स्वार्थकी ही है, धर्मकी तनिक भी आवश्यकता नहीं। क्या उनका यह कहना ठीक है?"

महात्माजीने कहा,—"देखो भाई! ये बातें कुछ पाखण्डियोंकी नास्तिकताके फल हैं। ऐसे लोग धर्मकी महत्ताको न समझकर उसके बहिरंगपरही विचार किया करते हैं। यहाँ मैं तुम्हें धर्म और नीतिके समवाय सम्बन्धका दिग्दर्शन कराता हूँ। देखो —

यह हमारी नीतिका फल है, जिससे हम अच्छे विचारोंपर आ सकें। दुनियाके साधारण शास्त्र बतलाते हैं, कि दुनिया

कैसी है और नीति-शास्त्र बतलाता है, कि दुनिया कैसी होनी चाहिये। इससे जाना जा सकता है, कि मनुष्यको किस तरह का आचरण करना चाहिये। मनुष्यके हृदयमें दो खिड़कियाँ हैं। एकमेंसे उसे दिखाई देता है, कि वह खुद कैसा है और दूसरीमेंसे दिखाई देता है, कि उसे कैसा होना चाहिये।

मनुष्यका कर्त्तव्य है, कि वह शरीर, मन और मस्तिष्क इन तीनोंकी अलग-अलग जाँच करे; परन्तु उसे इतनेपरही निर्भर न रह जाना चाहिये। यदि वह केवल जाँचपरही निर्भर रह जाये तो उसने जो कुछ ज्ञान लाभ किया है, उससे वह कुछ लाभ नहीं उठा सकता। उसे जानना चाहिये, कि अन्याय, दुष्टता, अभिमान आदिके कैसे परिणाम होते हैं, इतनाही नहीं, उसे यह भी जानना चाहिये, कि इन तीनोंके एकत्र मिल जानेसे कैसी खराबियाँ होती हैं। केवल इनको जानकर बैठनेसेही कुछ लाभ नहीं है। तदनुसार आचरण भी करना चाहिये। नीतिका विचार मकानके नकशेके जैसा है। नकशा बतलाता है, कि घर किस तरह बनाना चाहिये, परन्तु जिस भाँति मकान बन जानेपर नकशा व्यर्थ हो जाता है—उसका कोई उपयोग नहीं होता—उसी भाँति नीतिके विचारोंके अनुसार जो आचरण न किया गया हो, तो नीतिके विचार भी व्यर्थ हो जाते हैं। बहुत से मनुष्य नीतिके वाक्य याद करते हैं, उनपर भाषण देते हैं और बड़ी बड़ी बातें करते हैं; परन्तु वे उसके अनुसार चलते नहीं और चलनेकी इच्छा भी नहीं रखते। और कुछ लोग ऐसे हैं,

जो कहते हैं, कि नीतिके विचार इस दुनियामें आचरण करनेके लिये नहीं होते ; मरनेके बाद जिस दुनियामें हम जाते हैं उसमें करनेके लिये होते हैं। मगर उनका यह कथन प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता। एक विचारक व्यक्तिने कहा है, कि,—"हमें सम्पूर्ण मनुष्य बनना हो तो आजहीसे—चाहे जितना कष्ट उठा कर—नीतिके अनुसार आचरण करने लग जाना चाहिये। ऐसे विचारोंसे हमें भड़कना नहीं चाहिये, किन्तु अपनी जवाबदारी समझकर उसके अनुसार चलनेमें प्रसन्नता माननी चाहिये।

महान् योद्धा पैम्ब्रोक, ओपेराककी लड़ाईमें, लड़ाई खतम हुए बाद,जब अर्ल डार्विनसे मिला,तब डार्विनने उससे कहा, कि लड़ाई खतम हो चुकी है और उसमें हम लोगोंकी जीत हुई है। यह सुनकर पैम्ब्रोक जोरसे बोल उठा,—"तुमने मेरे साथ यह ठीक नहीं किया। जिसके विजयका मान मुझे मिलता—मेरे पहुँचनेके पहले लड़ाई खतम करके—मुझसे वह तुमने छीन लिया। जब तुमने मुझे युद्धमें बुलाया था, तो तुम्हें चाहिये था, कि मेरे आनेतक युद्ध बन्द रखते।" इसी प्रकार जब नीतिके विचारोंकी जवाबदारी अपनेपर लेनेकी मनुष्यकी इच्छा हो, तभी वह उस रास्ते चल सकता है।

ईश्वर सर्वशक्तिमान् है—सम्पूर्ण है। उसके स्नेहकी, उसकी दयाकी और उसके न्यायकी कोई सीमा नहीं है। यदि ऐसा है, तो हम जो उसके बन्दे—सेवक—गिने जाते हैं, हम कैसे नीति-मार्गको छोड़ सकते हैं ? नीति-मार्गपर चलनेवालेको

सफलता न हो, तो उसमें नीतिका कोई दोष नहीं है, किन्तु दोष उसीका है, जिसने नीतिका भङ्ग किया है। नीति मार्गपर चलकर जो नीतिकी रक्षा की जाती है, वह इसलिये नहीं, कि उसका बदला मिले। क्योंकि मनुष्य शाबाशीके लिये भलाई नहीं करता है, बल्कि इसलिये करता है, कि वह भलाई किये बिना रह नहीं सकता। उसके लिये भोजन और कार्यकी तुलना करनेपर अच्छा कार्यही उच्च प्रकारका भोजन प्रमाणित होगा। उसको यदि कोई दूसरा मनुष्य भलाई करनेका मौका देता है, तो वह भलाई करनेका मौका देनेवालेका उपकार मानता है। जिस प्रकार, कि भूखा मनुष्य भोजन देनेवालेको आशीर्वाद देता है।

ऊपर जिस नीति मार्गके विषयमें कहा गया है, वह ऐसा मार्ग नहीं है, जिससे दिखाऊ मनुष्यता प्राप्त की जाय। उसका अर्थ यह भी नहीं है, कि विशेष परिश्रमी बनना, विशेष शिक्षा प्राप्त करना, विशेष स्वच्छ रहना आदि। ये सब बातें तो उसमें आही जाती हैं; परन्तु इनके द्वारा केवल नीतिकी सरहदपर पहुँचनेके जैसा है। इसके सिवा भी इस मार्गमें मनुष्यके करनेके योग्य बहुत कुछ रह जाता है; और वह कर्त्तव्य रूपसे रहता है—इसलिये, कि वैसा करनेका मनुष्यका स्वभाव है। वह उसे यह समझकर नहीं करता, कि उससे उसको कुछ लाभ उठाना है।

नीतिके सम्बन्धमें इस समय जो विचार प्रचलित हैं, वे गम्भीर नहीं कहे जा सकते। कुछ लोग कहते हैं, कि नीतिको बहुत

जियादा जरूरत नहीं है। कुछ लोगोंका यह भी कथन है, कि धर्मका और नीतिका कोई सम्बन्ध नहीं है। मगर दुनियाके धर्मों की जाँच करनेसे मालूम होता है, कि बिना नीतिके धर्मा का निभाना कठिन है! सच्ची नीतिमें, बहुत अंशोंमें धर्मका समावेश हो जाता है। जो मनुष्य अपने स्वार्थके लिये नहीं, किन्तु नीतिके लियेही नीतिका पालन करते हैं, वे धार्मिक समझे जा सकते है। रशियामें ऐसे मनुष्य हैं, जो अपने देशकी भलाईके लिये अपना जीवन उत्सर्ग कर देते हैं। ऐसेही मनुष्योंको सच्चे नीतिवान् समझना चाहिये। जेरेमी बेनथम, जिसने, कि इङ्गलेण्ड-की प्रजाकी भलाईके लिये बहुतसे उत्तम-उत्तम नियमोंकी शोध की, इङ्गलिश लोगोंमें शिक्षा-प्रचारके लिये बड़ा भारी प्रयत्न किया, और कैदियोंकी दशा सुधारनेके लिये अथक परिश्रम किया, नीतिवान् कहा जा सकता है।

सच्ची नीतिका नियम यह है, कि हम जिस मार्गको जाते हैं, उसेही ग्रहण करके न रह जायें, किन्तु जो मार्ग सच्चा है—फिर चाहें, हम उससे परिचित हों या न हों—हमें उसे ग्रहण करनाही चाहिये। मतलब यह, कि जब हम यह, जान जायें, कि फलाँ मार्ग सच्चा है, तब हमें उसपर आनेके लिये निर्भय होकर जी तोड़ परिश्रम करना चाहिये। जब उक्त प्रकारकी नीतिका पालन किया जा सके, तबही हम आगे बढ सकते हैं। भाव यह है, कि नीति, सच्चा सुधार और सच्ची उन्नति ये तीनों बातें हमेशा एक साथही देखी जाती हैं।

हम अपनी इच्छाओंकी जाँच करें तो मालूम होगा, कि जो वस्तु हमारे पास होती है, वह प्राबल्य नहीं रहती, परन्तु जो चीज हमारे पास नहीं होती, उसको हम सदैव बहुमूल्य समझते हैं। ऐसी इच्छाएँ दो प्रकारकी होती हैं। एक निजका स्वार्थ साधनेकी इच्छा, और दूसरी दूसरोंको सुखी बनानेकी इच्छा। पहली प्रकारकी—स्वार्थ-साधनाकी—इच्छाको पूर्ण करनेका प्रयत्न करना अनीति है। दूसरी प्रकारकी इच्छा वह है जो हम स्वय अच्छा बनने और दूसरेकी भलाई करनेकी ओर ध्यान रखते हैं।

हम जो अच्छे काम करते हैं उससे हमें अभिमानी नहीं बना है और न उसकी हमें कीमत करना है। हमें तो केवल अधिक अच्छे बनने और निरन्तर अच्छे कार्य करनेकी इच्छा रखनेका प्रयत्न करना चाहिये। ऐसी इच्छाओंको पूराकरनेके आचरणकोही सच्ची नीति कहते हैं।

यदि हमारे घर-बार न हों, तो इसमें लज्जित होनेकी कोई बात नहीं है, परन्तु घरबार हों और उनका दुरुपयोग करें या व्यापार धन्धेमें बदमाशी करें तो हम अवश्य नीतिके मार्गको भूलते हैं। नीति नाम उसीका है जो हम करने योग्य कामको करें। ऐसीही नीतिकी आवश्यकता है और उसे हम उदाहरण द्वारा सिद्ध कर सकते हैं। जिस प्रजा या कुटुम्बमें अनीतिके बीज—फूट, असत्य, ईर्षा आदि—देखे गये हैं, वे बर-

नहीं आती। यह अपने अन्दर—आत्मामें—ही मौजूद है, केवल उसको विकसित करनेकी आवश्यकता है। चार सौ वर्ष पहले यूरुपमें अन्याय और असत्यकी बड़ी प्रबलता थी और इसीलिये वहाँकी जनता घड़ी भरके लिये भी शान्तिसे नहीं रह सकती थी। इसका कारण यह था, कि उस वक्त वहाँके लोगोंमें नीतिका अभाव था। सारी नीतियोंका दोहन करनेसे सार यह निकलता है, कि मनुष्य जातिका भला करनेका प्रयत्न करनाही उत्कृष्ट नीति है। इस कुञ्जीके द्वारा नीतिरूपी पेटीको खोलनेसे नीतिके दूसरे सब नियम हमें प्राप्त हो जाते हैं।

क्या यह कहा जा सकता है,कि अमुक कार्य नीतिवाला है? इस प्रश्नका हेतु नीति या अनीतिवाले कार्यकी तुलना करना नहीं है, परन्तु उन्हीं बातोंके विषयमें विचारकरना है,कि जिनके प्रतिकूल कभी कुछ नहीं कहा जाता है और जिनको कुछ लोग नीति-युक्त समझते हैं। हमारे बहुतसे कार्योंमें खास तौरसे नीतिका समावेश नहीं होता। प्राय साधारण रीति-रीवाजोंके अनुसारही हम बर्ताव किया करते हैं। रूढ़िके अनुसार चलना भी कई बार आवश्यक होता है। यदि उन नियमोंका पालन करते हुए लोग नहीं चलें, तो अन्धाधुन्ध मच जाये और संसारके काम-काज बन्द हो जायें। मगर इस तरह रूढ़िके अनुसार चलनेको नीतिका नाम देना अनुचित है।

नीतिके कार्य हमारी इच्छासे किये हुए होने चाहिये। जब तक हम मशीनकी तरह कार्य करते हैं तबतक हमारे कार्यमें

नीति नहीं आती। यह विचार नीति युक्त है, कि मशीनकी भाँति कार्य करना चाहिये और करेंगे, क्योंकि इसमें हम अपनी विवेक-बुद्धिका व्यवहार करते हैं। यह बात ध्यानमें रखने योग्य है, कि यान्त्रिक कार्य और उसको करनेके विचारका करना इन दोनोंमें भेद है। राजा एक अपराधीको क्षमा कर देता है, तो यह उसका कार्य युक्त हो सकता है; पर क्षमा-पत्र ले जानेवाला चपरासी राजाके किये हुए उस नीति-कार्यमें यन्त्रके जैसा है। चपरासीका भी यह कार्य नीति युक्त हो सकता है, यदि वह कर्त्तव्य समझकर उस क्षमा-पत्रको ले जाये।

जो मनुष्य अपनी बुद्धि और मस्तिष्कका उपयोग न कर नदीके बहावमें जैसे लकड़ी बही जाती है, वैसेही बहे जाता है, वह नीतिको कैसे समझ सकता है? कई बार रूढ़िके विरुद्ध होकर लोग परोपकारके विचारोंसे काम करते हैं। महावीर "वेंडल फिलिप्स" ऐसाही था। उसने एक बार भाषण देते हुए कहा था,—

"जबतक तुम स्वयं विचार करना और उन्हें प्रकट करना नहीं सीखते, तबतक मुझे इसकी चिन्ता नहीं है, कि मेरे विषयमें तुम्हारी क्या राय है।"

इसी प्रकार हम सबको इसी बातकी दरकार रहे, कि हमारी अन्तरात्मा क्या कहती है, तभी यह कहा जासकता है, कि हम नीतिकी सीढ़ीपर पहुँचे हैं। और यह स्थिति तबतक हम प्राप्त नहीं कर सकते, जबतक, कि हमें यह विश्वास न हो, हम यह

अनुभव न करें, कि हमारे प्राय सभी कार्योंका साक्षी सर्वान्तर्यामी ईश्वर है।

इस तरहसे किया हुआ कार्य स्वत अच्छा है, इतनाही समझना बस नहीं है, मगर वह काय शुभ करनेके हेतुसे किया हुआ होना चाहिये, अर्थात् इसका आधार काम करनेवालेकी इच्छापर निर्भर है, कि अमुक काममें नीति है या नहीं।

दो मनुष्य एकही कामको करते हैं, परन्तु उनमेंसे एकका काम नीतिमय हो सकता है और दूसरेका नीति-रहित। जैसा, कि एक मनुष्य अत्यन्त दयार्द्र होकर गरीबोंको भोजन देता है और दूसरा मान-बड़ाई या प्रतिष्ठाके लिये या ऐसे ही अन्य स्वार्थपूर्ण विचारसे वही कार्य्य करता है। दोनों काम एकहीसे होनेपर भी पहलेका काम नीति-युक्त है और दूसरेका नीति-रहित। यहाँपर यह बात ध्यानमें रखनेकी है, कि 'नीतिमय' और 'नीतिरहित' इन दोनों शब्दोंमें भेद है। यह भी देखा जाता है, कि नीतिवाले कामका अच्छा प्रभाव हमेशा दृष्टिगत नहीं होता। नीतिका विचार करते समय हमें केवल इतनाही देखना है, कि जो कार्य किया गया है वह शुभ है और शुद्ध भावोंसे किया गया है। उसके परिणामपर हमारा कुछ अधिकार नहीं है। फल देनेवाला तो केवल एक ईश्वर ही है। सम्राट सिकन्दरको (अलेग्जेडरको) इतिहासकारोंने महान् बतलाया है, वह जहां-जहाँ गया, वहीं उसने ग्रीकके शिक्षा, कला कौशल, उद्योग और रीति रिवाज चलाये। उन्हींके फलोंका आज हम आनन्दसे आस्वाद

कर रहे हैं। परन्तु प्राय इन सब कामोंके करनेमें सिकन्दरका हेतु बड़प्पन प्राप्त करनेके और विजयी बननेका था, इस लिये यह कौन कहता है, कि उसके कामोंमें नीति थी। वह भले ही बड़ा माना गया हो, पर नीतिमान नहीं कहा जा सकता।

उक्त विचारोंसे सिद्ध होता है, कि इतनाही बस नहीं है, कि नीति युक्त प्रत्येक कार्य्य शुभ इच्छासे होना चाहिये, किन्तु वह बिना किसीके दबावके किया हुआ होना चाहिये। मैं आफिसमें देरसे पहुँचूँगा तो मेरी नौकरी चली जायगी, इस नौकरी छूटनेके भयसे यदि कोई सवेरे जल्दी उठे तो इसमें कोई नीति नहीं है। इसी तरह कोई पास पैसा न होनेसे कहे कि मैं गरीबी और सादगीके साथ रहता हूँ, तो उसमें भी नीति नहीं है मगर धनवान् होनेपर मैं यह विचार करूँ, कि मैं अपने आसपास दरिद्रता और दु खोंको देख रहा हूँ, ऐसी दशामें मैं ऐशो आराम कैसे भोग सकता हूँ, मुझे गरीबी और सादगीके साथ ही रहना चाहिये। इस प्रकार होनेवाली सादगी ही नीति-पूर्ण गिनी जा सकती है। इसी प्रकार नौकरोंके भाग जानेके डरसे उनके साथ सहानुभूति बतलाना अथवा उनको पूरा या अधिक वेतन देना नीति नहीं है, केवल स्वार्थ है। नीति तो यह है, कि मैं उनकी भलाईकी इच्छा करूँ और यह समझ कर उन्हें रक्खूँ, कि मेरी आमदनीमें उनका भी भाग या हिस्सा है।

एक बार इँग्लैंडके द्वितीय रिचर्डके पास कुछ किसान लोग आये और उन्होंने लाल आँखें करके रिचर्डसे अपने हकोंको माँगा।

रिचर्डने उस समय कुछ न कहकर अपने हाथसे उनके हकों की दस्तावेज लिखकर किसानोंको सौंप दी। रिचर्डको जो किसानोंसे भय था, वह जब दूर हो गया, तब उसने जोर-जुलुम करके वह दस्तावेज पीछे उनसे छीन ली। इस घटनाके विषयमें कोई यह कहे, कि रिचर्डका पहला काम नीति युक्त था; और दूसरा अनीति-युक्त, तो यह कहना भूलसे खाली नहीं है। क्योंकि रिचर्डका पहला काम भयके कारण ही हुआ था, अतएव उसमें नीतिका जरा भी अंश न था।

जिस भाँति नीतिके कार्यमें भय और जबरदस्ती न होनी चाहिये, उसी भाँति उसमें स्वार्थ भी न होना चाहिये। इस कहनेसे यह मतलब नहीं है, कि जिन कामोंमें स्वार्थ होता है वे बुरे होते हैं। बात यह है, कि ऐसे कामोंको नीतिकी उपमा देना, नीति-युक्त कहना—नीतिको कलंक लगानेके जैसा है। यह समझ कर, कि प्रामाणिकपन एक अच्छी पालिसी है, प्रमाणिक बनना बहुत समयतक नहीं निभ सकता। अंगरेजीके प्रसिद्ध कवि शेक्सपियरने कहा है, कि—"लाभकी दृष्टिसे जो प्रीति की जाती है वह प्रीति नहीं है।"

जिसप्रकार इस लोकमें लाभ या प्रीतिकी दृष्टिसे किया गया काम नीतिवाला नहीं कहा जा सकता उसी प्रकार, परलोकमें लाभ प्राप्तिकी आशासे जो काम किया जाता है, वह भी नीति-वाला नहीं है—नीति रहित है। 'अच्छा करना अच्छेके ही लिये है' यह समझकर जो काम किया जाता है, वास्तवमें वही

कर रहे हैं। परन्तु प्राय इन सब कामोंके करनेमें सिकन्दरका हेतु बड़प्पन प्राप्त करनेके और विजयी बननेका था; इस लिये यह कौन कहता है, कि उसके कामोंमें नीति थी। वह भले ही बड़ा माना गया हो, पर नीतिमान नहीं कहा जा सकता।

उक्त विचारोंसे सिद्ध होता है, कि इतनाही बस नहीं है, कि नीति युक्त प्रत्येक कार्य्य शुभ इच्छासे होना चाहिये; किन्तु वह बिना किसीके दबावके किया हुआ होना चाहिये। मैं आफिसमें देरसे पहुँचूँगा तो मेरी नौकरी चली जायगी, इस नौकरी छूटनेके भयसे यदि कोई सवेरे जल्दी उठे तो इसमें कोई नीति नहीं है। इसी तरह कोई पास पैसा न होनेसे कहे कि मैं गरीबी और सादगीके साथ रहता हूँ, तो उसमें भी नीति नहीं है मगर धनवान् होनेपर मैं यह विचार करूँ, कि मैं अपने आसपास दरिद्रता और दु खोंको देख रहा हूँ, ऐसी दशामें मैं ऐशो आराम कैसे भोग सकता हूँ, मुझे गरीबी और सादगीके साथ ही रहना चाहिये। इस प्रकार होनेवाली सादगी ही नीति-पूर्ण गिनी जा सकती है। इसी प्रकार नौकरोंके भाग जानेके डरसे उनके साथ सहानुभूति बतलाना अथवा उनको पूरा या अधिक वेतन देना नीति नहीं है, केवल स्वार्थ है। नीति तो यह है, कि मैं उनकी भलाईकी इच्छा करूँ और यह समझ कर उन्हें रक्खूँ, कि मेरी आमदनीमें उनका भी भाग या हिस्सा है।

एक बार इँग्लैंडके द्वितीय रिचर्डके पास कुछ किसान लोग आये और उन्होंने लाल आँखें करके रिचर्डसे अपने हकोंको माँगा।

रिचर्डने उस समय कुछ न कहकर अपने हाथसे उनके हकों की दस्तावेज लिखकर किसानोंको सौंप दी। रिचर्डको जो किसानोंसे भय था, वह जब दूर हो गया, तब उसने जोर-जुलुम करके वह दस्तावेज पीछे उनसे छीन ली। इस घटनाके विषयमें कोई यह कहे, कि रिचर्डका पहला काम नीति युक्त था, और दूसरा अनीति युक्त, तो यह कहना भूलसे खाली नहीं है। क्योंकि रिचर्डका पहला काम भयके कारण ही हुआ था, अतएव उसमें नीतिका जरा भी अंश न था।

जिस भाँति नीतिके कार्यमें भय और जबरदस्ती न होनी चाहिये, उसी भाँति उसमें स्वार्थ भी न होना चाहिये। इस कहनेसे यह मतलब नहीं है, कि जिन कामोंमें स्वार्थ होता है, वे बुरे होते हैं। बात यह है, कि ऐसे कामोंको नीतिकी उपमा देना, नीति-युक्त कहना—नीतिको कलंक लगानेके जैसा है। यह समझकर, कि प्रामाणिकपन एक अच्छी पालिसी है, प्रमाणिक बनना बहुत समयतक नहीं निभ सकता। अंगरेजीके प्रसिद्ध कवि शेक्सपियरने कहा है, कि—"लाभकी दृष्टिसे जो प्रीति की जाती है वह प्रीति नहीं है।"

जिसप्रकार इस लोकमें लाभ या प्रीतिकी दृष्टिसे किया गया काम नीतिवाला नहीं कहा जा सकता उसी प्रकार, परलोकमें लाभ प्राप्तिकी आशासे जो काम किया जाता है, वह भी नीति-वाला नहीं है—नीति रहित है। 'अच्छा करना अच्छेके ही लिये है' यह समझकर जो काम किया जाता है, वास्तवमें वही

कर रहे हैं। परन्तु प्राय. इन सब कामोंके करनेमें सिकन्दरका हेतु बडप्पन प्राप्त करनेके और विजयी बननेका था, इस लिये यह कौन कहता है, कि उसके कामोंमें नीति थी। वह भले ही बडा माना गया हो, पर नीतिमान नहीं कहा जा सकता।

उक्त विचारोंसे सिद्ध होता है, कि इतनाही बस नहीं है, कि नीति युक्त प्रत्येक कार्य्य शुभ इच्छासे होना चाहिये, किन्तु वह बिना किसीके दबावके किया हुआ होना चाहिये। मैं आफिसमें देरसे पहुँचूँगा तो मेरी नौकरी चली जायगी, इस नौकरी छूटनेके भयसे यदि कोई सवेरे जल्दी उठे तो इसमें कोई नीति नहीं है। इसी तरह कोई पास पैसा न होनेसे कहे कि मैं गरीबी और सादगीके साथ रहता हूँ, तो उसमें भी नीति नहीं है मगर धनवान् होनेपर मैं यह विचार करूँ, कि मैं अपने आसपास दरिद्रता और दु खोंको देख रहा हूँ, ऐसी दशामें मैं ऐशो आराम कैसे भोग सकता हूँ, मुझे गरीबी और सादगीके साथ ही रहना चाहिये। इस प्रकार होनेवाली सादगी ही नीति-पूर्ण गिनी जा सकती है। इसी प्रकार नौकरोंके भाग जानेके डरसे उनके साथ सहानुभूति बतलाना अथवा उनको पूरा या अधिक वेतन देना नीति नहीं है, केवल स्वार्थ है। नीति तो यह है, कि मैं उनकी भलाईकी इच्छा करूँ और यह समझ कर उन्हें रक्खूँ, कि मेरी आमदनीमें उनका भी भाग या हिस्सा है।

एक बार इँग्लैंडके द्वितीय रिचर्डके पास कुछ किसान लोग आये और उन्होंने लाल आँखें करके रिचर्डसे अपने हकोंको माँगा।

रिचर्डने उस समय कुछ न कहकर अपने हाथसे उनके हकों की दस्तावेज लिखकर किसानोंको सौंप दी। रिचर्डको जो किसानोंसे भय था, वह जब दूर हो गया, तब उसने ज़ोर-ज़ुलुम करके वह दस्तावेज पीछे उनसे छीन ली। इस घटनाके विषयमें कोई यह कहे, कि रिचर्डका पहला काम नीति युक्त था, और दूसरा अनीति-युक्त, तो यह कहना भूलसे खाली नहीं है। क्योंकि रिचर्डका पहला काम भयके कारण ही हुआ था, अतएव उसमें नीतिका जरा भी अंश न था।

जिस भाँति नीतिके कार्यमें भय और जबरदस्ती न होनी चाहिये, उसी भाँति उसमें स्वार्थ भी न होना चाहिये। इस कहनेसे यह मतलब नहीं है, कि जिन कामोंमें स्वार्थ होता है, वे बुरे होते हैं। बात यह है, कि ऐसे कामोंको नीतिकी उपमा देना, नीति-युक्त कहना—नीतिको कलंक लगानेके जैसा है। यह समझकर, कि प्रामाणिकपन एक अच्छी पालिसी है, प्रमाणिक बनना बहुत समयतक नहीं निभ सकता। अंगरेजीके प्रसिद्ध कवि शेक्सपियरने कहा है, कि—"लाभकी दृष्टिसे जो प्रीति की जाती है वह प्रीति नहीं है।"

जिसप्रकार इस लोकमें लाभ या प्रीतिकी दृष्टिसे किया गया काम नीतिवाला नहीं कहा जा सकता उसी प्रकार, परलोकमें लाभ प्राप्तिकी आशासे जो काम किया जाता है, वह भी नीति-वाला नहीं है—नीति रहित है। 'अच्छा करना अच्छेके ही लिये है' यह समझकर जो काम किया जाता है, वास्तवमें वही

कर रहे हैं। परन्तु प्राय इन सब कामोंके करनेमें सिकन्दरका हेतु बड़प्पन प्राप्त करनेके और विजयी बननेका था; इस लिये यह कौन कहता है, कि उसके कामोंमें नीति थी। वह भले ही बड़ा माना गया हो, पर नीतिमान नहीं कहा जा सकता।

उक्त विचारोंसे सिद्ध होता है, कि इतनाही बस नहीं है, कि नीति युक्त प्रत्येक कार्य्य शुभ इच्छासे होना चाहिये; किन्तु वह बिना किसीके दबावके किया हुआ होना चाहिये। मैं आफिसमें देरसे पहुँचूँगा तो मेरी नौकरी चली जायगी, इस नौकरी छूटनेके भयसे यदि कोई सवेरे जल्दी उठे तो इसमें कोई नीति नहीं है। इसी तरह कोई पास पैसा न होनेसे कहे कि मैं गरीबी और सादगीके साथ रहता हूँ, तो उसमें भी नीति नहीं है मगर धनवान् होनेपर मैं यह विचार करूँ, कि मैं अपने आसपास दरिद्रता और दुःखोंको देख रहा हूँ, ऐसी दशामें मैं ऐशो आराम कैसे भोग सकता हूँ, मुझे गरीबी और सादगीके साथ ही रहना चाहिये। इस प्रकार होनेवाली सादगी ही नीति-पूर्ण गिनी जा सकती है। इसी प्रकार नौकरोंके भाग जानेके डरसे उनके साथ सहानुभूति बतलाना अथवा उनको पूरा या अधिक वेतन देना नीति नही है, केवल स्वार्थ है। नीति तो यह है, कि मैं उनकी भलाईकी इच्छा करूँ और यह समझ कर उन्हें रक्खूँ, कि मेरी आमदनीमें उनका भी भाग या हिस्सा है।

एक बार इँग्लैंडके द्वितीय रिचर्डके पास कुछ किसान लोग आये और उन्होंने लाल आँखें करके रिचर्डसे अपने हक्कोंको माँगा।

लिये कार्यकी परीक्षा करनेमें कोई हानि नहीं देख पड़ती
कितनेही बुरे कार्य्योंसे हम लाभ उठाते हैं। लेकिन लाभ उठाते
हुए भी मन हमारा यही कहता रहता है, कि ये कार्य बुरे हैं।

इस न्यायसे इस बातकी सिद्धि होती है, कि भले या बुरे
कामोंका आधार मनुष्यके स्वार्थपर नहीं है, और न उनका
आधार मनुष्यकी इच्छाओंपर ही है। नीति
भूतिमें कभी किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं देख
बालकपर स्नेह होनेके कारण हम उसे कोई
हैं, परन्तु यदि उस वस्तुसे बालकको किसी
पहुँचे, तो जान-बूझकर उस वस्तुका देना
प्रकट करना उत्तम है; परन्तु नीतिके विचारों
सीमा न बाँधी गयी हो, तो वह विषके समान
हमें यही मालूम है, कि नीतिके नियम अचल हैं।
परिवर्तन अवश्य होता रहता है, परन्तु नीति कभी
प्रातःकालको जब हम निद्राके आवेगसे मुक्त होकर
हैं, तभी हमें संसारके सारे सम्मुखस्थ पदार्थ
जब वे मिची होती हैं, तब कुछ भी नहीं
य सिद्ध हुआ, कि
सूर्य चन्द्रादि पदार्थ परिवर्तन
नियमोंके पीछे भी लागू होता है। यह
दशामें हम नीतिके नियमोंको नहीं समझते,
ज्ञानचक्षु खुल जाते हैं, तब उसके समझनेमें हमें

नहीं पड़ती। मनुष्य सदा-सर्वदा अच्छेपरही दृष्टि रखता है—यह अच्छा भला हो या बुरा इन बातोंपर उसका ध्यान नहीं जाता, अतएव स्वार्थ दृष्टिसे देखकर वे अनीतिको भी नीति समझ लेते और बता देते हैं। पर ऐसा समय जियादः दूर नहीं है, जब मनुष्य स्वार्थके विचारोंका परित्याग कर धर्म-नीतिको ओरही लक्ष्य रखेंगे। अभी तो नीतिकी शिक्षाही नितान्त आरम्भिक दशामें है। जैसी बेकन और डारविनके पहले शास्त्रोंकी स्थिति थी वैसीही स्थिति आज नीतिकी है।

पहले मनुष्य इस बातके जाननेके लिये उत्सुक थे, कि 'सत्य' क्या है। वे नीतिके विषयको समझनेके पहले पृथ्वी आदिके नियमोंकी शोधमें लगे हुए थे। कौन ऐसा विद्वान देखनेमें आया है, कि जिसने साहसके साथ दुःख सहनकर और अपने पुराने वहमोंको एक ओर रख सच्ची नीतिके शोध करनेमें अपना जीवन बिताया है? जिस समय प्रकृतिकी शोध करनेवाले मनुष्योंकी भांति नीतिका शोध करनेमें मनुष्य निमग्न होंगे, उस समय नीतिके विचार एकत्रित किये जा सकेंगे। शास्त्रोंके विचारोंमें तो अब भी बहुतसा मतभेद है, परन्तु नीतिके विषयमें इतना मतभेद होनेकी सम्भावना नहीं है। तब भी यह संभव है, कि कुछ काल पर्यन्त नीतिके नियमोंमें मत-भिन्नता रहेगी। इसका यह अर्थ नहीं समझना चाहिये, कि सत्य और असत्यका भेद समझमें आने योग्य नहीं है।

इससे हमें यह मालूम हो गया, कि नीतिको रचना मनुष्योंके

लिये कार्यकी परीक्षा करनेमें कोई हानि नहीं देख पड़ती। कितनेही बुरे कार्य्योंसे हम लाभ उठाते हैं। लेकिन लाभ उठाते हुए भी मन हमारा यही कहता रहता है, कि ये कार्य बुरे हैं।

इस न्यायसे इस बातकी सिद्धि होती है, कि भले या बुरे कामोंका आधार मनुष्यके स्वार्थपर नहीं है, और न उसका आधार मनुष्यकी इच्छाओंपर ही है। नीति और सहानुभूतिमें कभी किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं देखा जाता। किसी बालकपर स्नेह होनेके कारण हम उसे कोई वस्तु देना चाहते हैं, परन्तु यदि उस वस्तुसे बालकको किसी प्रकारकी हानि पहुँचे, तो जान बूझकर उस वस्तुका देना अनीति है। प्रेम प्रकट करना उत्तम है, परन्तु नीतिके विचारों द्वारा यदि उसकी सीमा न बाँधी गयी हो, तो वह विषके समान हो जाता है। हमें यही मालूम है, कि नीतिके नियम अचल हैं। मतोंमें परिवर्त्तन अवश्य होता रहता है, परन्तु नीति कभी नहीं बदलती प्रात कालको जब हम निद्राके आवेगसे मुक्त होकर आँखें खोलते हैं, तभी हमें संसारके सारे समुपस्थ पदार्थ दृष्टि गोचर होते हैं; परन्तु जब वे मिची होती हैं, तब कुछ भी नहीं देख पड़ता। अतएव सिद्ध हुआ, कि हमारी स्थिति परिवर्त्तनशील है। संसार के सूर्य चन्द्रादि पदार्थ परिवर्त्तन शील नहीं। यही न्याय नीतिके नियमोंके पीछे भी लागू होता है। यह ठीक है, कि अपनी अज्ञ दशामें हम नीतिके नियमोंको नहीं समझते, परन्तु जब हमारे ज्ञानचक्षु खुल जाते हैं, तब उसके समझनेमें हमें कुछ भी कठिनता

नहीं पड़ती। मनुष्य सदा-सर्वदा अच्छेपरही दृष्टि रखता है—यह अच्छा भला हो या बुरा इन बातोंपर उसका ध्यान नहीं जाता, अतएव स्वार्थ दृष्टिसे देखकर वे अनीतिको भी नीति समझ लेने और बता देते है। पर ऐसा समय ज़ियादा दूर नहीं है, जब मनुष्य स्वार्थके विचारोंका परित्याग कर धर्म-नीतिको ओरही लक्ष्य रखेंगे। अभी तो नीतिकी शिक्षाही नितान्त आरम्भिक दशामें है। जैसी बेकन और डारविनके पहले शास्त्रोंकी स्थिति थी वैसीही स्थिति आज नीतिकी है।

पहले मनुष्य इस बातके जाननेके लिये उत्सुक थे, कि 'सत्य' क्या है। वे नीतिके विषयको समझनेके बदले पृथ्वी आदिके नियमोंकी शोधमें लगे हुए थे। कौन ऐसा विद्वान देखनेमें आया है कि जिसने साहसके साथ दु ख सहनकर और अपने पुराने वहमोंको एक ओर रख सच्ची नीतिके शोध करनेमें अपना जीवन बिताया है? जिस समय प्रकृतिकी शोध करनेवाले मनुष्योंकी भाँति नीतिका शोध करनेमें मनुष्य निमग्न होंगे, उस समय नीतिके विचार एकत्रित किये जा सकेंगे। शास्त्रोंके विचारोंमें तो अब भी बहुतसा मतभेद है, परन्तु नीतिके विषयमें इतना मतभेद होनेकी सभावना नहीं है। तब भी यह सभव है, कि कुछ काल पर्यन्त नीतिके नियमोंमें मत भिन्नता रहेगी। इसका यह अर्थ नहीं समझना चाहिये, कि सत्य और असत्यका भेद समझमें आने योग्य नहीं है।

इससे हमें यह मालूम हो गया, कि नीतिको रचना मनुष्योंके

लिये कार्यकी परीक्षा करनेमें कोई हानि नहीं देख पड़ती कितनेही बुरे कार्य्योंसे हम लाभ उठाते हैं। लेकिन लाभ उठाते हुए भी मन हमारा यही कहता रहता है, कि ये कार्य बुरे हैं।

इस न्यायसे इस बातकी सिद्धि होती है, कि भले या बुरे कामोंका आधार मनुष्यके स्वार्थपर नहीं है, और न उसका आधार मनुष्यकी इच्छाओंपर ही है। नीति और सहानुभूतिमें कभी किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं देखा जाता। किसी बालकपर स्नेह होनेके कारण हम उसे कोई वस्तु देना चाहते हैं, परन्तु यदि उस वस्तुसे बालकको किसी प्रकारकी हानि पहुँचे, तो जान बूझकर उस वस्तुका देना अनीति है। प्रेम प्रकट करना उत्तम है; परन्तु नीतिके विचारों द्वारा यदि उसकी सीमा न बाँधी गयी हो, तो वह विषके समान हो जाता है। हमें यही मालूम है, कि नीतिके नियम अचल हैं। मतोंमें परिवर्त्तन अवश्य होता रहता है, परन्तु नीति कभी नहीं बदलती प्रात कालको जब हम निद्राके आवेगसे मुक्त होकर आँखें खोलते हैं, तभी हमें ससारके सारे सम्मुखस्थ पदार्थ दृष्टि गोचर होते हैं, परन्तु जब वे मिची होती हैं, तब कुछ भी नहीं देख पड़ता। अतएव सिद्ध हुआ, कि हमारी स्थिति परिवर्त्तनशील है। ससार के सूर्य चन्द्रादि पदार्थ परिवर्त्तन शील नहीं। यही न्याय नीतिके नियमोंके पीछे भी लागू होता है। यह ठीक है, कि अपनी अज्ञ दशामें हम नीतिके नियमोंको नहीं समझते, परन्तु जब हमारे ज्ञानचक्षु खुल जाते हैं, तब उसके समझनेमें हमें कुछ भी कठिनता

नहीं पड़ती। मनुष्य सदा-सर्वदा अच्छेपरही दृष्टि रखता है—यह अच्छा भला हो या बुरा इन बातोंपर उसका ध्यान नहीं जाता ; अतएव स्वार्थ दृष्टिसे देखकर वे अनीतिको भी नीति समझ लेते और बता देते हैं। पर ऐसा समय जियादः दूर नहीं है, जब मनुष्य स्वार्थके विचारोंका परित्याग कर धर्म-नीतिको ओरही लक्ष्य रखेंगे। अभी तो नीतिकी शिक्षाही नितान्त प्रारम्भिक दशामें है। जैसी बेकन और डारविनके पहले शास्त्रोंकी स्थिति थी वैसीही स्थिति आज नीतिकी है।

पहले मनुष्य इस बातके जाननेके लिये उत्सुक थे, कि 'सत्य' क्या है। वे नीतिके विषयको समझनेके बदले पृथ्वी आदिके नियमोंकी शोधमें लगे हुए थे। कौन ऐसा विद्वान देखनेमें आया है, कि जिसने साहसके साथ दुःख सहनकर और अपने पुराने वहमोंको एक ओर रख सच्ची नीतिके शोध करनेमें अपना जीवन बिताया है? जिस समय प्रकृतिकी शोध करनेवाले मनुष्योंकी भांति नीतिका शोध करनेमें मनुष्य निमग्न होंगे, उस समय नीतिके विचार एकत्रित किये जा सकेंगे। शास्त्रोंके विचारोंमें तो अब भी बहुतसा मतभेद है, परन्तु नीतिके विषयमें इतना मतभेद होनेकी संभावना नहीं है। तब भी यह संभव है, कि कुछ काल पर्यन्त नीतिके नियमोंमें मत-भिन्नता रहेगी। इसका यह अर्थ नहीं समझना चाहिये, कि सत्य और असत्यका भेद समझमें आने योग्य नहीं है।

इससे हमें यह मालूम हो गया, कि नीतिको रचना मनुष्योंके

लिये कार्यकी परीक्षा करनेमें कोई हानि नहीं देख पड़ती कितनेही बुरे कार्य्योंसे हम लाभ उठाते हैं। लेकिन लाभ उठा हुए भी मन हमारा यही कहता रहता है, कि ये कार्य बुरे हैं।

इस न्यायसे इस बातकी सिद्धि होती है, कि भले या बु कामोंका आधार मनुष्यके स्वार्थपर नहीं है, और न उस आधार मनुष्यकी इच्छाओंपर ही है। नीति और सहा भूतिमें कभी किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं देखा जाता। किस बालकपर स्नेह होनेके कारण हम उसे कोई वस्तु देना चाह हैं, परन्तु यदि उस वस्तुसे बालकको किसी प्रकारकी हा पहुँचे, तो जान बूझकर उस वस्तुका देना अनीति है। प्रे प्रकट करना उत्तम है, परन्तु नीतिके विचारों द्वारा यदि उसक सीमा न बाँधी गयी हो, तो वह विषके समान हो जाता है हमें यही मालूम है, कि नीतिके नियम अचल हैं। मतोंमें परि वर्त्तन अवश्य होता रहता है; परन्तु नीति कभी नहीं बदलत प्रात कालको जब हम निद्राके आवेगसे मुक्त होकर आँखें खोल हैं, तभी हमें ससारके सारे सम्मुखस्थ पदार्थ दृष्टि गोचर होते हैं परन्तु जब वे मिची होती हैं, तब कुछ भी नहीं देख पड़ता अतएव सिद्ध हुआ, कि हमारी स्थिति परिवर्त्तनशील है। ससा के सूर्य चन्द्रादि पदार्थ परिवर्त्तन शील नहीं। यही न्याय नीतिके नियमोंके पीछे भी लागू होता है। यह ठीक है, कि अपनी अ दशामें हम नीतिके नियमोंको नहीं समझते, परन्तु जब हमा ज्ञानचक्षु खुल जाते हैं, तब उसके समझनेमें हमें कुछ भी कठिनत

नहीं पड़ती। मनुष्य सदा-सर्वदा अच्छेपरही दृष्टि रखता है—यह अच्छा भला हो या बुरा इन बातोंपर उसका ध्यान नहीं जाता। अतएव स्वार्थ दृष्टिसे देखकर वे अनीतिको भी नीति समझ लेते और बता देते हैं। पर ऐसा समय जियाद दूर नहीं है, जब मनुष्य स्वार्थके विचारोंका परित्याग कर धर्म-नीतिको ओरही लक्ष्य रखेंगे। अभी तो नीतिकी शिक्षाही नितान्त आरम्भिक दशामें है। जैसी बेकन और डारविनके पहले शास्त्रोंकी स्थिति थी वैसीही स्थिति आज नीतिकी है।

पहले मनुष्य इस बातके जाननेके लिये उत्सुक थे, कि 'सत्य' क्या है। वे नीतिके विषयको समझनेके पहले पृथ्वी आदिके नियमोंकी शोधमें लगे हुए थे। कौन ऐसा विद्वान् देखनेमें आया है कि जिसने साहसके साथ दुःख सहकर और अपने पुराने वहमोंको एक ओर रख सच्ची नीतिके शोध करनेमें अपना जीवन बिताया है? जिस समय प्रकृतिकी शोध करनेवाले मनुष्योंकी भाँति नीतिका शोध करनेमें मनुष्य निमग्न होंगे, उस समय नीतिके विचार एकत्रित किये जा सकेंगे। शास्त्रोंके विचारोंमें तो अब भी बहुतसा मतभेद है, परन्तु नीतिके विषयमें इतना मतभेद होनेकी सम्भावना नहीं है। तब भी यह संभव है, कि कुछ काल पर्यन्त नीतिके नियमोंमें मत-भिन्नता रहेगी। इसका यह अर्थ नहीं समझना चाहिये, कि सत्य और असत्यका भेद समझमें आने योग्य नहीं है।

इससे हमें यह मालूम हो गया, कि नीतिकी रचना मनुष्योंके

करनेके लिये हम धर्मको कुछ मानते हैं। परन्तु इस प्रकारके भयसे जो प्रीति उत्पन्न होती है और उसके द्वारा हम जो काम करते हैं, उसे धर्म समझना बड़ी भारी भूल है। परन्तु अन्तर्मे अंकुर नहीं फूटना। जल सिंचनके बिना बीज सूखाही रहता है और यदि उसको विशेष समयतक जल नहीं मिलता, तो वह नष्ट भी हो जाता है। इससे यह स्पष्ट है कि, सच्ची नीतिमें सच्चे धर्मका समावेश होनाही चाहिए। दूसरी तरहसे यही बात यों कही जा सकती है कि, बिना धर्मके नीतिका पालन नहीं हो सकता। मतलब यह कि, नीतिको धर्मरूपसे पालना चाहिए।

हम यह भी देखते हैं, कि संसारके प्रसिद्ध प्रसिद्ध धर्मोंमें नीतिके जो नियम बताये गये हैं, वे प्राय समान हैं और उन धर्मोंके आचार्योंने यह भी समझाया है, कि धर्मकी नींव नीति पर है। यदि नींवका पाया खोदकर फेंक दिया जाये, तो मकान गिर पड़ेगा। इसी तरह यदि नीतिरूपी पाया टूट जाये, तो धर्मरूपी भीत भी तत्कालही गिरकर भूमिसात् हो जायेगी।

शास्त्रकार यह भी बताते हैं, कि नीतिको धर्म बतानेमें कोई हानि नहीं है। डाक्टर काइट परमात्मासे प्रार्थना करते हुए कहता है कि "हे परमात्मन्, नीतिके सिवा मुझे दूसरे ईश्वरकी आवश्यकता नहीं है।" विचार करनेसे जान पड़ेगा, कि मुँहसे 'परमात्मा' पुकारते रहें और कामोंमें खंजर चलाते रहें—'मुखमें राम बगलमें छुरी' को चरितार्थ करते रहें, तो क्या परमात्मा हमें क्षमा कर देगा? क्या परमात्मा हमारी सहायता करेगा? एक

मनुष्य मानता है, कि ईश्वर है , परन्तु वह उसकी आज्ञाओंका पालन नहीं करता और दूसरा ईश्वरको उसके नामसे नहीं पहचानता , परन्तु अपने आचरण द्वारा उसको भजता है—ईश्वरीय नियमोंमें वह कर्त्ताको जानता है और जानकर उन नियमोंका पालन करता है। इन दोनों मनुष्योंमेंसे हमें कौनसे मनुष्यको धर्मात्मा और नीतिमान् समझना चाहिए? इसका उत्तर देते हुए क्षणभर भी विचार न कर,हम ठीक कह सकते हैं, कि दूसरा मनुष्यही धर्मात्मा और नीतिमान् है।

जो कार्य सच्चा और श्रेष्ठ हो, उसे अपनी इच्छासेही करना चाहिए। इसीमें कुलीनता है। मनुष्यकी कुलीनताका सच्चा चिह्न यह है, कि वह हवासे बिखर जानेवाले बादलोंकी तरह इधर-उधर न भटककर जो कार्य उसको उचित जँचता है, उसी पर अचल रहकर कार्य करता है और कर सकता है। तब भी उसे यह जान लेना आवश्यक है, कि अपनी वृत्तियोंको वह किस रास्ते ले जाना चाहता है। हम जानते हैं कि, प्रत्येक बातमें हम अपने स्वामी नहीं हैं। हमारी कितनीही ऐसी बाह्य परि-स्थितियाँ हैं, जिनके अनुसार हमें चलना पड़ता है। जिस प्रकार जिन देशोंमें हिमालय जैसी ठंड पड़ती है, वहाँ—अपनी इच्छा हो न या हो—शरीरको गरम रखनेके लिये हमें गरम कपड़े पहनने ही पड़ते हैं, बुद्धिमत्तासे काम लेनाही पड़ता है।

अब सवाल यह है, कि हमारी बाहरकी और आसपासकी परिस्थितिको देखते हुए, हमें नीतिके अनुसार बर्ताव करना पड़ता

करनेके लिये हम धर्मको कुछ मानते हैं। परन्तु इस प्रक
भयसे जो प्रीति उत्पन्न होती है और उसके द्वारा हम जो
करते हैं, उसे धर्म समझना बड़ी भारी भूल है। परन्तु अ
अकुर नहीं फूटता। जल सिंचनके बिना बीज सुखाही रह
और यदि उसको विशेष समयतक जल नहीं मिलता, तो वह
भी हो जाता है। इससे यह स्पष्ट है कि, सच्ची नीतिमें
धर्मका समावेश होनाही चाहिए। दूसरी तरहसे यही बात
कही जा सकती है कि, बिना धर्मके नीतिका पालन नहीं
सकता। मतलब यह कि, नीतिको धर्मरूपसे पालना चाहिए

हम यह भी देखते हैं, कि संसारके प्रसिद्ध प्रसिद्ध ध
नीतिके जो नियम बताये गये हैं, वे प्राय समान हैं और
धर्मोंके आचार्योंने यह भी समझाया है, कि धर्मकी नींव न
पर है। यदि नींवका पाया खोदकर फेंक दिया जाये, तो म
गिर पड़ेगा। इसी तरह यदि नीतिरूपी पाया टूट जाये
धर्मरूपी भीत भी तत्कालही गिरकर भूमिसात् हो जायेगी।

शास्त्रकार यह भी बताते हैं कि नीतिको धर्म बतानेमें
हानि नहीं है। डाक्टर काइट परमात्मासे प्रार्थना करते
कहता है कि "हे परमात्मन्, नीतिके सिवा मुझे दूसरे ईश्व
आवश्यकता नहीं है।" विचार करनेसे जान पड़ेगा, कि मुँ
'परमात्मा' पुकारते रहें और कामोंमें खंजर चलाते रहें—'मुँ
राम बगलमें छुरी' को चरितार्थ करते रहें, तो क्या परमा
हमें क्षमा कर देगा ? क्या परमात्मा हमारी सहायता करेगा ?

मनुष्य मानता है, कि ईश्वर है, परन्तु वह उसकी आज्ञाओंका पालन नहीं करता और दूसरा ईश्वरको उसके नामसे नहीं पहचानता, परन्तु अपने आचरण द्वारा उसको भजता है— ईश्वरीय नियमोंमें वह कर्त्ताको जानता है और जानकर उन नियमोंका पालन करता है। इन दोनों मनुष्योंमेंसे हमें कौनसे मनुष्यको धर्मात्मा और नीतिमान् समझना चाहिए? इसका उत्तर देते हुए क्षणभर भी विचार न कर,हम ठीक कह सकते हैं, कि दूसरा मनुष्यही धर्मात्मा और नीतिमान् है।

जो कार्य सच्चा और श्रेष्ठ हो, उसे अपनी इच्छासेही करना चाहिए। इसीमें कुलीनता है। मनुष्यकी कुलीनताका सच्चा चिह्न यह है, कि वह हवासे बिखर जानेवाले बादलोंकी तरह इधर-उधर न भटककर जो कार्य उसको उचित जँचता है, उसी पर अचल रहकर कार्य करता है और कर सकता है। तब भी उसे यह जान लेना आवश्यक है, कि अपनी वृत्तियोंको वह किस रास्ते ले जाना चाहता है। हम जानते हैं कि, प्रत्येक बातमें हम अपने स्वामी नहीं हैं। हमारी कितनीही ऐसी बाह्य परिस्थितियाँ हैं, जिनके अनुसार हमें चलना पडता है। जिस प्रकार जिन देशोंमें हिमालय जैसी ठंड पडती है, वहाँ—अपनी इच्छा हो न या हो—शरीरको गरम रखनेके लिये हमें गरम कपडे पहनने ही पडते हैं; बुद्धिमत्तासे काम लेनाही पडता है।

अब सवाल यह है, कि हमारी बाहरकी और परिस्थितिको देखते हुए, हमें नीतिके अनुसार बर्ताव करना

है या नहीं ? अथवा उसमें नीति या अनीति होती है या नहीं ! इस प्रश्नका विचार करते समय हमें डारविनके विचारोंकी भी जाँचकर लेनी आवश्यक है। यद्यपि डारविन नीतिके भविष्यका लेखक नहीं था, तथापि उसने यह बताया है, कि बाह्य वस्तुओंके साथ नीतिका कैसा प्रगाढ सम्बन्ध है। जिसके ऐसे विचार हैं, कि दुनियामें केवल मानसिक और शारीरिक बलही काम आते हैं, उसके लिए इस बातकी दरकार नहीं है, कि वह नीतिका पालन करे या न करे। ऐसे लोगोंको चाहिए, कि वे डारविनके विचारोंको पढ़ें, उनपर विचार करें। डारविनका कथन है कि, मनुष्य और दूसरे प्राणियोंमें जीवित रहने की इच्छा रहती है। उसका यह भी कथन है, कि जो इस लड़ाईमें जीवित रह सकते हैं, वेही विजयी कहे जा सकते हैं और जो योग्य नहीं होते, उनका जड मूलसे नाश हो जाता है। पर वह लड़ाई शारीरिक बलपरही आधार नहीं रखती।

मनुष्य और रीछ या भैंसेकी तुलना करनेपर मालूम पडता है, कि शारीरिक बलमें रीछ या भैंसाही मनुष्यसे अधिक बलवान् है, और यदि इनमेंसे किसी एकके साथ मनुष्य कुश्ती करेगा, तो वह हार जायेगा। इतना होनेपर भी हम देखते हैं, कि मनुष्य बुद्धि बलमें इनसे अधिक बलवान् है। इसी प्रकारकी तुलना हम मनुष्य-जातिकी जुदी जुदी जातियोंमें कर सकते हैं। ऐसा नहीं है, कि लडाईके समय जिसके पास अधिक बलवान् या अधिक संख्यामें मनुष्य होते हैं, वही जीतता है, किन्तु

जिसके पास कला-कौशल और अच्छे बुद्धिमान् मनुष्य होते हैं—फिर वे थोड़े या निर्बलही क्यों न हों—वही जीतता है। यह बुद्धि बलका उदाहरण है।

डारविन कहता है, कि शरीर-बल और बुद्धि-बलसे भी नीति बल बढ़कर होता है और यह बात हम अनेक प्रकारसे देख सकते हैं। अयोग्यकी अपेक्षा योग्य अधिक समयतक दुनियामें टिका रहता है। कुछ लोगोंका मत है कि डारविनने तो यही सिखाया है, कि "सूरा सो पूरा।" मतलब यह, कि अन्तमें शरीरवाले किनारा पा जाते हैं। और इस कथनसे कुछ लेभग्गू लोग यह मान लेते हैं, कि नीति किसी कामकी नहीं है। परन्तु डारविनके ये विचार बिलकुल नहीं हैं। प्राचीन इतिहासोंके प्रमाणों द्वारा यह देखा जाता है, कि जो जातियाँ अनीतिवाली थीं उनका आज सर्वथा नाश हो गया है। सोडम और गमोरा देशके मनुष्य बहुत अनीतिमान् थे, इसलिए वे देश आज मिट्टीमें मिल गये। आज भी हम देख रहे हैं, कि जो जातियाँ अनीति मार्गपर चल रही हैं, वे नष्ट होती जा रही हैं।

अब हमें कुछ सीधे सादे उदाहरणोंको लेकर देखना चाहिये, कि मनुष्य जातिको टिका रखनेके लिए साधारण नीति भी कितनी आवश्यक है। शान्त स्वभाव नीतिका पहला भाग है। ऊपरसे देखनेसे तो यही मालूम होता है, कि मिजाजी—अभिमानी मनुष्य उन्नत हो सकता है; परन्तु थोड़ाही विचार करनेसे जान पड़ेगा कि, अभिमान रूपी तलवारही मनुष्यका गला काट

है। नीतिका दूसरा भाग यह है, कि मनुष्यको व्यसन सेवन नहीं करना चाहिए। मृत्यु संख्याके आँकड़ों द्वारा विलायतमें यह देखा गया है, कि तीस-पैंतीस वर्षकी आयुके शराबी मनुष्य तेरह या चौदह वर्षसे अधिक नहीं जीते। परन्तु निर्व्यसनी मनुष्य सत्तर वर्षकी आयुतक जीते हैं। व्यभिचार सेवन न करना नीतिका तीसरा भाग है। डारविन कहता है, कि व्यभिचारी मनुष्य बहुत जल्दी मर जाते हैं। उनके बच्चे नहीं होते और यदि होते भी हैं, तो वे बहुतही दुबले होते हैं। व्यभिचारी मनुष्योंके मन क्षीण हो जाते हैं और जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, वैसेही वैसे वे पागलोंके समान मालूम होने लगते हैं।

यदि जातियोंकी नीतिका विचार किया जाये, तो उनकी भी यही स्थिति दिखाई देगी। अंडमान-टापूकी मनुष्य जातिके पुरुष अपनी औरतोंको—ज्योंही उनके बच्चे चलने-फिरने लगते हैं—छोड़ देते हैं। मतलब यह, कि वे लोग परमार्थ बुद्धिके बदले अत्यन्त स्वार्थ बुद्धि दिखलाते हैं। उसका परिणाम यह हुआ है, कि वह जाति धीरे-धीरे नष्ट होने लगी है। डारविन कहता है कि पशु-पक्षियोंमें भी कई अंशोंमें परमार्थ बुद्धि देखी जाती है। डरपोक जानवर भी अपने बच्चोंकी रक्षा करनेके लिये निर्भीक बन जाते हैं। वह कहता है, कि प्राणी-मात्रमें यदि थोड़ी-बहुत परमार्थ-बुद्धि नहीं होती, तो संसारमें कँटीली और जहरीली वनस्पतियोंके सिवा शायदही कोई जीव

हेता। मनुष्योंमें और अन्य प्राणियोंमें जो सबसे बड़ा भेद है, वह यही है, कि मनुष्य सबसे जियादा परमार्थ बुद्धिवाले होते हैं। और इसीलिये वे अपने नीति बलके अनुसार दूसरोंके लिये, अपने बच्चोंके लिये, अपने कुटुम्बके लिये और अपने देशके लिये अपने को बलिदान करते आये हैं। मतलब यह, कि डारविन स्पष्ट बतलाता है, कि नीतिबलही सर्वोत्कृष्ट बल है। ग्रीसवासी आधुनिक यूरोपियन लोगोंसे विशेष बुद्धिमान् थे परन्तु जब उन्होंने नीतिका त्याग किया, तब उनकी बुद्धिही उनकी शत्रु हो गया और आज वे लोग देखे भी नहीं जाते। अतएव मनु सदा यह विचार रखकर, कि मनुष्य जाति न पैसेके आधारपर टिकी रह सकती है और न सेनाके आधारपर—टिकी रह सकती है, तो केवल परमार्थ रूपी परम नीतिपर—नीतिका ही मनुष्य मात्रको आचरण करना चाहिए।

यह जो कहा जाता है, कि सब नीतियोंमें सार्वजनिक कल्याण समाया हुआ है, यह सत्य है। जिस भाँति न्यायाधीशोंमें जब न्याय बुद्धि होती है, तभी न्यायालयमें लोगोंको न्यायका सुख मिलता है, उसी भाँति प्रीति, दया आदि गुण दूसरोंके साथ काम पड़नेपरही सकते हैं। इसी प्रकार एकता भी एक दूसरेके बनाया जा सकती है। स्वदेशाभिमानके विषयमें तो क्या? यह तो मूर्तिमान् सार्वजनिक [redacted] सार्वजनिक दृष्टिसे देखनेपर ऐसा

[दे]गा, जिसका फल नीतिका पालन करनेवालेकोही मिले। कितनी बार ऐसा कहा जाता है, कि सत्यता आदि गुणोंका सामनेवाले मनुष्यके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहता। परन्तु हमें इतना तो स्वीकार करनाही पड़ेगा, कि झूठ बोलकर किसीको कष्ट देनेसे सामनेवाले मनुष्यका नुकसान होगा। तब यह स्पष्ट मान लेना पड़ेगा, कि सच बोलनेसे उसका होनेवाला नुकसान रुक जायगा।

इसी प्रकार जब कोई मनुष्य अमुक कानून, नियम या रीति रिवाजको पसन्द न करके जन समाजके बाहर रहता है, तब भी उसके कार्योंका प्रभाव जन-समाजपर पड़ता है। ऐसा मनुष्य विचार-जगत्में रहता है। वह इस बातकी परवा नहीं करता, कि उसके विचारोंवाली दुनिया अभी पैदा नहीं हुई है। ऐसे मनुष्योंके लिए किसी प्रचलित प्रथा या रीति रिवाजका तिरस्कार करनेके लिये इतनाही विचार पर्याप्त है, कि वह प्रथा या रीति-रिवाज अच्छा नहीं है। वह तो अपने विचारोंके अनु[सार] दूसरोंसे आचरण करानेके प्रयत्नमेंही लगा रहता है। इसी [प्रकार] संसारके महापुरुषों, तीर्थङ्करों और पैगम्बरोंने संसार[की] गतिको फेरा है।

जबतक मनुष्य स्वार्थी रहता है—दूसरोंके सुखोंकी परवा नहीं करता, तबतक वह पशुके जैसा या उससे भी नीचे दरजे का रहता है। हम देखते हैं, कि मनुष्य पशुसे उन्नत है। पर यह तभी हो सकता है, जब कि वह अपने कुटुम्ब-परिवारकी

स्वार्थके लिए प्रयत्नशील देख पड़ता है। यह मनुष्य-जातिमें तब और भी अधिक उन्नत होता है, जब वह अपनी जातिको या अपने देशको अपनाही कुटुम्ब समझता है और जब किसी अंगारी जातिको भी अपने कुटुम्बके तुल्य समझने लगता है, तब तो यह और भी ऊँची श्रेणीपर चढ़ जाता है। मतलब यह, कि मनुष्य मनुष्य जातिकी सेवामें जितनाही पीछे रहता है, उतनाही वह हैवान है—पशु है या मूर्ख है। हममें जब तक अपनी स्त्रीके लिये, अपनी जातिके लिये और स्वयं कष्ट उठाते हुए भी अन्य जनोंके लिये सहानुभूति न हो, तबतक स्पष्ट है, कि हम मनुष्य-जातिके दुःखोंकी कदर करना नहीं जानते। परन्तु तब भी स्त्री, बच्चे या जातिके लिये—जिन्हें हमने अपना समझा है, उनके लिये—भेद बुद्धिसे या यथार्थ-बुद्धिसे कुछ न कुछ सहानुभूति होती है।

मतलब यह, कि जबतक हमारे हृदयमें प्रत्येक मनुष्यके ...ये दया न हो, तबतक न तो हमने नीतिधर्मका ...या पाठ्या चाहिये और यह न कहना चाहिये, ...झा है। उच्चनीति सार्वजनिक होनी चा... ...सन्धमें प्रत्येक मनुष्यका हमपर अधिकार है। ...हुआ कि उसकी सदा सेवा करना हमारा ... ...विचार कर व्यवहार करना चाहिये, कि हमारा ...अधिकार नहीं है। इसपर कोई यह कहे, कि ...व्यवहार करनेवाला मनुष्य, ...

रक्षाके लिए प्रयत्नशील देख पड़ता है। वह मनुष्य जातिमें तब और भी अधिक उन्नत होता है, जब वह अपनी जातिको या अपने देशको अपनाही कुटुम्ब समझता है और जब निरी जंगली जातिको भी अपने कुटुम्बके तुल्य समझने लगता है, तब तो वह और भी ऊँची श्रेणीपर चढ़ जाता है। मतलब यह, कि मनुष्य मनुष्य जातिकी सेवामें जितनाही पीछे रहता है, उतनाही वह हैवान है—पशु है या अपूर्ण है। हममें जब तक अपनी स्त्रीके लिये, अपनी जातिके लिये और स्वयं कष्ट उठाते हुए भी अन्य जनोंके लिये सहानुभूति न हो, तबतक स्पष्ट है, कि हम मनुष्य-जातिके दु:खोंकी कदर करना नहीं जानते। परन्तु तब भी स्त्री, बच्चे या जातिके लिये—जिन्हें हमने अपना समझा है, उनके लिये—भेद बुद्धिसे या यथार्थ बुद्धिसे कुछ न कुछ सहानुभूति होती है।

मतलब यह, कि जबतक हमारे हृदयमें प्रत्येक मनुष्यके लिये दया न हो, तबतक न तो हमने नीतिधर्मका पालन किया कहना चाहिये और यह न कहना चाहिये, कि हमने उसे समझा है। उच्चनीति सार्वजनिक होनी चाहिये। हमारे सम्बन्धमें प्रत्येक मनुष्यका हमपर अधिकार है। इसका अर्थ यह हुआ, कि उसकी सदा सेवा करना हमारा कर्त्तव्य है। हमें यह विचार कर व्यवहार करना चाहिये, कि हमारा किसीके ऊपर अधिकार नहीं है। इसपर कोई यह कहे, कि इस प्रकार-के विचारोंको रखकर व्यवहार करनेवाला मनुष्य, दुनियांके

देगा, जिसका फल नीतिका पालन करनेवालेकोही मिले। कितनी वार ऐसा कहा जाता है, कि सत्यता आदि गुणोंका सामनेवाले मनुष्यके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहता। परन्तु हमें इतना तो स्वीकार करनाही पडेगा, कि झूठ बोलकर किसीको कष्ट देनेसे सामनेवाले मनुष्यका नुकसान होगा। तब यह स्पष्ट मान लेना पडेगा, कि सच बोलनेसे उसका होनेवाला नुकसान रुक जायगा।

इसी प्रकार जब कोई मनुष्य अमुक कानून, नियम या रीति-रिवाजको पसन्द न करके जन समाजके बाहर रहता है, तब भी, उसके कार्योंका प्रभाव जन-समाजपर पडता है। ऐसा मनुष्य विचार-जगत्में रहता है। वह इस बातकी परवा नहीं करता, कि उसके विचारोंवाली दुनिया अभी पैदा नहीं हुई है। ऐसे मनुष्योंके लिए किसी प्रचलित प्रथा या रीति रिवाजका तिरस्कार करनेके लिये इतनाही विचार पर्याप्त है, कि वह प्रथा या रीति-रिवाज अच्छा नहीं है। वह तो अपने विचारोंके अनुसार दूसरोंसे आचरण करानेके प्रयत्नमेंही लगा रहता है। इसी प्रकार संसारके महापुरुषों, तीर्थङ्करों और पैगम्बरोंने संसार चक्रकी गतिको फेरा है।

जबतक मनुष्य स्वार्थी रहता है—दूसरोंके सुखोंकी परवा नहीं करता, तबतक वह पशुके जैसा या उससे भी नीचे दरजेका रहता है। हम देखते हैं, कि मनुष्य पशुसे उन्नत है। पर यह तभी हो सकता है, जब कि वह अपने कुटुम्ब-परिवारकी

रक्षाके लिए प्रयत्नशील देख पड़ता है। वह मनुष्य जातिमें तब और भी अधिक उन्नत होता है, जब वह अपनी जातिको या अपने देशको अपनाही कुटुम्ब समझता है और जब निरी जंगली जातिको भी अपने कुटुम्बके तुल्य समझने लगता है, तब तो वह और भी ऊँची श्रेणीपर चढ़ जाता है। मतलब यह, कि मनुष्य मनुष्य जातिकी सेवामें जितनाही पीछे रहता है, उतनाही वह हैवान है—पशु है या अपूर्ण है। हममें जब तक अपनी स्त्रीके लिये, अपनी जातिके लिये और स्वयं कष्ट उठाते हुए भी अन्य जनोंके लिये सहानुभूति न हो, तबतक स्पष्ट है, कि हम मनुष्य-जातिके दुःखोंको कद्र करना नहीं जानते। परन्तु तब भी स्त्री, बच्चे या जातिके लिये—जिन्हें हमने अपना समझा है, उनके लिये—भेद बुद्धिसे या यथार्थ बुद्धिसे कुछ न कुछ सहानुभूति होती है।

मतलब यह, कि जबतक हमारे हृदयमें प्रत्येक मनुष्यके लिये दया न हो, तबतक न तो हमने नीतिधर्मका पालन किया कहना चाहिये और यह न कहना चाहिये, कि हमने उसे समझा है। उच्चनीति सार्वजनिक होनी चाहिये। हमारे सम्बन्धमें प्रत्येक मनुष्यका हमपर अधिकार है। इसका अर्थ यह हुआ कि उसकी सदा सेवा करना हमारा कर्त्तव्य है। हमें यह विचार कर व्यवहार करना चाहिये, कि हमारा किसीके ऊपर अधिकार नहीं है। इसपर कोई यह कहे, कि इस प्रकारके विचारोंको रखकर व्यवहार करनेवाला मनुष्य, दुनियाँके

देगा, जिसका फल नीतिका पालन करनेवालेकोही मिले। कितनी वार ऐसा कहा जाता है, कि सत्यता आदि गुणोंका सामनेवाले मनुष्यके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहता। परन्तु हमें इतना तो स्वीकार करनाही पडेगा, कि झूठ बोलकर किसीको कष्ट देनेसे सामनेवाले मनुष्यका नुकसान होगा। तब यह स्पष्ट मान लेना पडेगा, कि सच बोलनेसे उसका होनेवाला नुकसान रुक जायगा।

इसी प्रकार जब कोई मनुष्य अमुक कानून, नियम या रीति रिवाजको पसन्द न करके जन समाजके बाहर रहता है, तब भी उसके कार्योंका प्रभाव जन-समाजपर पडता है। ऐसा मनुष्य विचार-जगत्‌में रहता है। वह इस बातकी परवा नहीं करता, कि उसके विचारोंवाली दुनिया अभी पैदा नहीं हुई है। ऐसे मनुष्योंके लिए किसी प्रचलित प्रथा या रीति रिवाजका तिरस्कार करनेके लिये इतनाही विचार पर्याप्त है, कि वह प्रथा या रीति-रिवाज अच्छा नहीं है। वह तो अपने विचारोंके अनुसार दूसरोंसे आचरण करानेके प्रयत्नमेंही लगा रहता है। इसी प्रकार संसारके महापुरुषों, तीर्थङ्करों और पैगम्बरोंने संसार चक्रकी गतिको फेरा है।

जबतक मनुष्य स्वार्थी रहता है—दूसरोंके दुःखोंकी परवा नहीं करता, तबतक वह पशुके जैसा या उससे भी नीचे दरजे का रहता है। हम देखते हैं, कि मनुष्य पशुसे उत्तम है। पर यह तभी हो सकता है, जब कि वह अपने कुटुम्ब-परिवारकी

झपाटेमें आकर पिस जायेगा, तो उसका कहना सर्वथा भ्रम है। क्योंकि सारे संसारको इस बातका अनुभव है, कि जो एक निष्ठासे जन सेवा करते हैं, परमात्मा उनकी सदा रक्षा करता है।

इस प्रकारकी नीतिकी दृष्टिसे मनुष्य-मात्र एकसे हैं। इसका अर्थ यह नहीं करना चाहिये, कि प्रत्येक मनुष्य एक सरीखे ओहदेका उपभोग करता है अथवा एक ही जातिका काम करता है। किन्तु उसका यह अर्थ है, कि यदि मैं उच्चपद भोग रहा हूँ, तो उसका दायित्व उठानेकी मुझमें शक्ति है, इससे न तो मुझे अभिमानी बन जाना चाहिये और न यह समझना चाहिये, कि दूसरे जो लोग थोड़ा दायित्व उठानेवाले हैं, वे मुझसे हल्के हैं। यह 'समझना' हमारे मनकी स्थितिके ऊपर आधार रखता है। और जबतक हमारे मनकी ऐसी स्थिति नहीं होती, तबतक यही कहना चाहिये, कि हम अभी बहुत पीछे हैं।

इस नियमके अनुसार एक जाति अपने ऐश्वर्यके लिये दूसरी [illegible] राज्य नहीं कर सकती। आज अमेरिकाके लोग, अमेरिकाके असली निवासियोंको हीन बनाकर, उनपर राज्य कर रहे हैं। परन्तु यह बात नीतिके विरुद्ध है। उन्नत प्रजाके अधिकारमें नीची जातियाँ हों, तो उस उन्नत प्रजाका कर्त्तव्य है, कि वह नीची जातियोंको अपने जैसी बनानेका प्रयत्न करे। इसी नियमके अनुसार राजा, प्रजासे बड़ा नहीं, किन्तु उसका नौकर है—गुलाम है। अमलदार लोग अपना अमल

भोगनेके लिये नहीं, किन्तु प्रजाको सुखी बनानेके लिये है। प्रजासत्तात्मक राज्यमें यदि लोग स्वार्थी हों, तो समझना चाहिये, कि वह राज्य किसी कामका नहीं—व्यर्थ है।

और इसी नियमके अनुसार जो एक राज्यमें रहते हैं अथवा जो एक जातिके हैं, उनमें बलवान् मनुष्योंका कर्त्तव्य है, कि वे निर्बलोंकी रक्षा करें, यह नहीं कि, उन्हें पीस डालें। इस प्रकारके कारोबारमें न दुर्भिक्ष हो सकता है और न कोई अत्यन्त धनवान् हो सकता है। कारण यह हो नहीं सकता, कि हम अपने पड़ोसीको दुःखी देखकर सुखी रह सकें। परम नीतिका पालन करनेवाले मनुष्यसे पैसा जोड़ा नहीं जा सकता। नीतिमान् पुरुषको यह देखकर घबराना न चाहिये, कि इस प्रकारकी नीति जगत्में बहुत कम देखी जाती है। क्योंकि वह अपनी नीतिका मालिक है, उसके परिणामका नहीं। यदि नीतिका पालन न करेगा, तो दोषी समझा जायेगा, परन्तु अच्छा यदि होगा, तो उसे कोई दोष न देगा। आम जनतापर न मनुष्यकी हिला डालती और आश्चर्य

इस प्रकारके विचार मनुष्यकी हिला डालती और आश्चर्य में डाल देते हैं, कि "मैं जवाबदार हूँ" "यह मेरा कर्त्तव्य है।" हमारे कानोंमें इस प्रकारकी गुप्त आवाज सदा आती रहती है, कि "हे मानव! यह कार्य तेरा है, तुझेजय अथवा पराजय प्राप्त करना है तेरे जैसा तू ही है क्योंकि इतने एक सरीखी दो वस्तुएँ कहीं नहीं बनीं। तेरा कर्त्तव्य है, उसे तू पालन कर।"

इन सब बातोंका सार यह है कि, जो मनुष्य स्वयम् शुद्ध है, किसीसे द्वेष नहीं करता, किसीके द्वारा खोटा लाभ नहीं उठाता और सदा मनको पवित्र रख कर आचरण करता है, वही मनुष्य धर्मात्मा है, वही सुखी है और वही धनवान् है। ऐसेही लोगोंसे मनुष्य जातिकी सेवा होसकती है। जिस दियासलाई में देवता—आग—न हो, वह दूसरी लकड़ियोंको कैसे सुलगा सकती है? जो मनुष्य स्वय नीतिका पालन नहीं करता, वह दूसरोंको क्या सिखा सकता है? जो स्वय डूब रहा है, वह दूसरेको कैसे निकाल सकता है? नीतिका आचरण करनेवाला मनुष्य यह सवाल कभी नहीं उठाता कि, दुनियाकी सेवा किस तरह करनी चाहिए। क्योंकि यह सवाल उसके मनमें पैदाही नहीं होता, मेथ्यूआरनल्ड कहता है कि, एक समय था, जब मैं अपने मित्रके लिए आरोग्य, विजय और कीर्त्तिकी इच्छा करता था; परन्तु अब ऐसी इच्छा नहीं करता। कारण यह है कि इन बातोंके होने या न होनेपर मेरे मित्रके सुख दु:खका आधार है। इसलिए अब मैं सदा यह इच्छा करता रहता हूँ कि " 'नीति' हमेशा अचल रहे—वह अपने नीति पथसे कभी विचलित न हो। अमरसन कहता है कि, अच्छे मनुष्योंका दु:ख भी उनके लिये सुख है और बुरे मनुष्योंका धन उनकी कीर्ति भी उनके लिये तथा संसारके लिये दु:खरूप है।"

* * * *

गान्धी-गीता



गान्धी दर्शन।

पन्द्रहवाँ अध्याय

असहयोग।

पुष्पवकने कहा—"महाराज ! आपके धर्म सम्बन्धी विचार भी मैंने जान लिये। आपके इन धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक विचारोंने मेरे हृदयमें यथेष्ट स्थान पा लिया है, साथ ही इस बातपर मुझे पूरा विश्वास होगया है, कि यदि आज देश, उन्नति विषयक आपके समस्त विचारोंके अनुसार कार्य्य करने लगे, तो निःसन्देह उसका अनति-विलम्ब उद्धार हो सकता है। परन्तु महाराज ! एक प्रश्न मैं आपसे और करता हूँ। आपने अपने मतानुसार जिस स्वराज्यकी कल्पना की है—अपने देशका उद्धार करनेके लिये जो योजना सोची है,—उसकी पूर्णता तो यही कहती है, कि अंगरेज और अंगरेजी सभ्यताको भारतमें केवल तटस्थकी तरह रहनेके लिये स्थान मिल सकेगा। उस समय वे देशके किसी कार्य्यमें आजकलकी भाँति सर्वेसर्वा न मिले रहेंगे। लेकिन महात्मन् ! जो आज इसी देशका नहीं, बल्कि पृथ्वीके बहुत बड़े भागका अधिकारी है, जिसकी शक्तिका लोहा प्रायः प्रत्येक राष्ट्र मान चुका है, वह कब आपकी और मेरी बातोंपर कर्णपात करेगा ! भारतमें इतनी शक्ति नहीं है

गान्धी-गीता

जो अङ्गरेजोंसे युद्धमें पार पा सके। ऐसी अवस्थामें आपने उद्दे
की सिद्धिके लिये—इतनी बड़ी शक्तिको निकम्मा बना दे
लिये—आपके पास कौनसी अमोघ शक्ति है? आयर्लैण्ड
पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करनेके लिये जितने भी निरुपद्रव उ
हैं, सबकी परीक्षा कर चुका और परिणाममें सबको असा
पाकर आज उसने शासकोंके विरुद्ध अस्त्र उठा लिया है।
आये दिन समाचारपत्रोंको पढ़नेसे मेरा भी यह दृढ़ विश्वास
गया है, कि वे इसबार अवश्यही सफलता प्राप्त कर ले
लेकिन आप तो उपद्रवके समर्थकही नहीं हैं, ऐसी अवस्थामें
अनिवार्य्य उद्देश्यकी सिद्धिके लिये आपने अवश्यही कोई अ
अस्त्र बचा रखा होगा। कोरा सत्याग्रह इस क्षेत्रमें सफल
हो सकेगा, क्योंकि उससे सरकार परेशान हो सकती
निकम्मी नहीं। फिर आपने अफ्रिकामें प्राय १५ वर्षतक सत्
महसे काम लेकर बहुतही थोड़े अधिकार पाये थे। प
भारत तो अगरेजोंकी छायातकसे मुक्त होना चाहता है, उ
लिये आपके पास क्या उपाय है?"

महात्माजीने हँसकर उत्तर दिया—"भाई! तुम्हारे इस
को सुनकर मुझे पूर्ण विश्वास होगया, कि तुम भारतको
स्वतन्त्र देखकर ही सन्तुष्ट हो सकते हो। अच्छी बात है।
तुम्हारे इस विचारका आदर करता हूँ।

"सुनो, इस कार्य्यकी सिद्धिके लिये भी मेरे पास उपाय
पहले एक उदाहरण सुन लो। देखो, सबसे अजेय शक्ति '

शक्ति' होती है। संघशक्ति या सम्मिलित शक्ति बडेसे बडे-राष्ट्रका उच्छेद करनेमें अनायास सफल हो सकती है। बलवान् से बलवान् राजा अपने शस्त्र या शारीरिक बलकेही कारण बलवान् नहीं कहलाता, वरन् अपने अंगीभूत मन्त्री, सेनापति, सैनिक और प्रजाके बल भरोसेपरही वह बलवान् कहा जाता है। जिनकी सहायतासे वह अपने देशको वशमें किये हुए है, यदि किसी उपायसे उसके उन उपादानोंका पृथक्करण कर दिया जाये, तो वह एकदिन निकम्मा होजायेगा। सर्प तभीतक अजेय है, जबतक उसमें विष है। जब मदारी उसका विष दूर कर देता है, तब उससे बालकतक खेल कर सकते हैं—वह उस समय उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। तदनुसार यह स्वयं सिद्ध बात है, यदि आज अंगरेज सरकारका साथ हमलोग एक दम त्याग दें, कि जिनकी सहायतापर उसका सारा दारोमदार है, तो सरकार एकदम निकम्मी होजाये और उस समय उसे झक मारकर हमारे देशका शासन हमें सौंप देना पड़ेगा। क्योंकि हमारी सहायतापरही उसका सारा दारोमदार है। इस सम्बन्ध-त्यागका नाम असहयोग है। यह अनिवार्य स्वतन्त्रताकी प्राप्तिका सुन्दर और सच्चा मार्ग है। संसारके अनेक देशोंने जब उनके अन्यान्य सारे उपाय व्यर्थ होचुके थे, तब एक-मात्र इस असहयोग द्वाराही स्वतन्त्रता प्राप्त की थी।

"यहाँ तुम प्रश्न कर सकते हो, कि आपका यह उपाय तो कानून-सम्मत नहीं है। तो मैं उत्तरमें दृढताके साथ"

कि असहयोग न्यायानुकूल और धर्मसम्मत मार्ग है। इससे कानूनकी तनिक भी अवहेला नहीं हो सकती। अतएव प्रत्येक भारतीय इसे ग्रहण कर सकता है। अंगरेज साम्राज्यके एक महान् भक्तने कहा है, कि ब्रिटिश व्यवस्थाके अनुसार तो सफल राज-विप्लवक पूर्णरूपसे वैध है एवं अपने कथाके समर्थनमें उसने ऐसे अनेक उदाहरण दिये हैं जिनसे मैं भी इनकार करनेमें असमर्थ हूँ। तथापि मैं सफल या असफल विप्लवको वैध कहनेका बिलकुल दावा नहीं करता। कारण, वलवेमें खून खराबीको स्थान प्राप्त है। मैं आरम्भसेही तुम्हें इस बातका उपदेश देता आया हूँ, कि खून खराबी चाहे आयलैंडके लिये कितनीही फलदायक सिद्ध हुई हो, पर वह हमारे उद्देश्यको कदापि सिद्ध नहीं कर सकती। मेरे मित्र शौकतअलीकी खून खराबीमें श्रद्धा थी। यदि उनसे बन पड़ता, तो वे अबतक ब्रिटिश साम्राज्यके विरुद्ध कभीके तलवार खींच होते, उनमें मनुष्योचित वीरत्व भी है और ब्रिटिश साम्राज्य-सामना करने योग्य बुद्धि भी। परन्तु सच्चे सिपाहीकी दृष्टिसे आज वे भारतमें तलवारसे काम लेना असम्भव समझ, अहिंसात्मक पक्षको ही मानकर मेरे मतमें आ मिले हैं। उन्होंने प्रतिज्ञा की है, कि जबतक मैं उनके साथ हूँ, तबतक अंगरेजोंकी तो बातही क्या, वे दुनियाके किसी भी मनुष्यके विरुद्ध खून खराबीका विचारतक न करेंगे। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ, कि वे अपनी प्रतिज्ञा सच्चे धार्मिककी भाँति पालन कर रहे हैं। सच्चे

ईमान्दारीके साथ वे मेरा साथ दे रहे हैं। इसी खून खराबीसे रहित असहयोगका मार्ग पकड़नेको मैं तुमसे भी प्रार्थना करूँगा। वास्तवमें, भारतमें हमलोगोंके अन्दर आज भाई शौकतअलीसे बढ़कर दूसरा कोई सच्चा सिपाही नहीं है। यदि कभी तलवार उठानेका अवसर आया, तो तुम देखोगे, कि वे किस तरह उठा सकते हैं। शायद उस समय मुझे भी तुम हिमालयके जंगलोंकी तरफ जाता हुआ देखोगे। जिस दिन भारत तलवारका न्याय मान लेगा, उस दिन मेरा भारतीय जीवन समाप्त होजायेगा। मैं मानता हूँ, कि भारतको प्रभुकी यह विशेष आज्ञा है, और शायद भारतके भूतपूर्व ऋषियोंने अपने सैंकड़ों वर्षके अनुभवके बाद इस महान् सत्यको ढूँढ निकाला था, कि सच्चा न्याय तलवारके बलपर नहीं, परन्तु आत्म संयमपर, आत्मवशपर और आत्मबलिदानपर अवलम्बित है। तुम मेरे पिछले उपदेशोंसे जान चुके होगे, कि मैं अटा बलके सिद्धान्तोंसे अलग हूँ और मरते दमतक अलग रहूँगा। इसीसे मैं तुम्हें यह समझाता हूँ, कि जहाँ भाई शौकतअलीने खून खराबीमें श्रद्धा रखते हुए भी मेरे सिद्धान्तका अवलम्बन किया है अहिंसाको दुर्बलोंका अस्त्र मान लिया है, वहाँ मैं इसे सबलसे भी सबल मानते हुए यह मानता हूँ, कि खाली हाथ जो, दुश्मनके सामने अपनी छाती खोलकर मरनेका साहस कर सकता है, वह सबसे बढ़कर वीर सिपाही है। असहयोग खून खराबी न करनेवाला अस्त्र है। एवं इसीसे यह गैर-कानूनी नहीं है।

मण्वाह नहीं किया जाता, वरन् वहाँकी भी प्रजा जब अन्याय
अत्याचारोंको सहन करती-करती परेशान हो जाती है, और ज
उसमें इतने बलका अभाव होता है, कि वह शस्त्र बलसे अप
शासकोंसे शासन-सूत्र छीन ले, अथवा वह इस बातको पस
न करती हो कि, अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिये खून-खराबी
जावे, तब उसके लिये केवल असहयोग ही एक मार्ग है। मैं दे
रहा हूँ, कि भारतीय पद-पदपर लाञ्छित हो रहे हैं। उन्हें उन
प्राप्त अधिकार नहीं मिल रहे हैं। माँगनेसे भी सुनवाई नह
होती। ऐसी अवस्थामें अहिंसा प्रिय प्रत्येक भारतवासीका य
कर्त्तव्य है, कि वह सरकारको मदद देना छोड़ दे। और उसे
सच्चा, प्रभावशाली, दुनियाको जबर्दस्तसे जबर्दस्त सरकार
शक्तियोंसे टक्कर लेनेवाला असहयोग करे। जबतक हमक
अपने प्रत्येक मामलेमें न्याय नहीं मिलता, जबतक हम नाखुश
नौकरशाहीसे अपने स्वाभिमानकी रक्षा नहीं कर सकते, तबतक
सहयोगही कैसे हो सकता है? अपने शास्त्रोंका कथन है, कि
अन्यायका न्यायसे, अन्यायीका न्याय-प्रिय
सत्यसे किसी प्रकार और किसी समय [illegible] हो
सकता। जबतक [illegible] मान और [illegible]
है, तबतक उसके साथ [illegible]
जब वही सरकार [illegible]
है, तब उसके साथ [illegible]
उतनाही जरूरी धर्म है।

परीक्षा करने अथवा उससे फल प्राप्ति होनेकी
करनी चाहिये। अन्याय और असत्य तो एक
हैं, जिनका प्रतिकार न होनेपर दुष्परिणामसे
रखनेके लिये यह उत्तम होगा, कि तुम उसके
फटको। सरकारसे असहयोग कब करना चाहिये ?
वरन् जिस समय देखो, कि प्रार्थना
होता, सरकार सहजही अपना
तब अधिक प्रतीक्षा न करो।
प्राप्य अधिकार
प्रकार करना
है, कि
पहुँच-

(१)
न्या

नग चाह नहीं किया जाता, वरन् कहींकी भी प्रजा जब अन्याय-अत्याचारोंको सहन करती-करती परेशान हो जाती है, और जब उसमें इतने बलका अभाव होता है, कि वह शस्त्र बलसे अपने शासकोंसे शासन-सूत्र छीन ले, अथवा वह इस बातको पसंद न करती हो कि, अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिये खून-खराबीको जाये, तब उसके लिये केवल असहयोग ही एक मार्ग है। मैं देख रहा हूँ, कि भारतीय पद्-पदपर लाञ्छित हो रहे हैं। उन्हें उनके प्राप्त अधिकार नहीं मिल रहे हैं। माँगनेसे भी सुनवाई नहीं होती। ऐसी अवस्थामें अहिंसा प्रिय प्रत्येक भारतवासीका यह कर्त्तव्य है, कि वह सरकारको मदद देना छोड़ दे। और उससे सच्चा, प्रभावशाली, दुनियाकी जबर्दस्तसे जबर्दस्त सरकारकी शक्तियोंसे टक्कर लेनेवाला असहयोग करे। जबतक हमको अपने प्रत्येक मामलेमें न्याय नहीं मिलता, जबतक हम नाखुश नौकरशाहीसे अपने स्वाभिमानकी रक्षा नहीं कर सकते, तबतक सहयोगही कैसे हो सकता है? अपने शास्त्रोंका कथन है, कि अन्यायका न्यायसे, अन्यायीका न्याय-प्रिय मनुष्यसे, झूठका सत्यसे किसी प्रकार और किसी समय सहयोग नहीं हो सकता। जबतक सरकार भारतके मान और प्रतिष्ठाकी रक्षक है, तबतक उसके साथ सहयोग करना आपका धर्म है, परन्तु जब वही सरकार आपकी इज्जतको बचानेके बदले लूटने लगती है, तब उसके साथ सहयोग नहीं, वरन्, असहयोग करना भी उतनाही जरूरी धर्म है।

व्यापार करने आये थे एवं इस व्यापार द्वाराही उन्होंने इस भारतको अपने माया जालमें फाँसा था। बात भी सच है। क्यों कि व्यापार और कला कौशल द्वाराही प्रत्येक देशकी उन्नति होती है। विलायतने आज सारे व्यापार और कला-कौशल हथिया लिये, अतएव वहाँवाले हमारे राजा बन बैठे हैं। हमारे पास व्यवसाय वाणिज्य नहीं रहा, अतएव हम प्रजा हो गये। यदि हमें शीघ्र स्वराज्य प्राप्त करनेकी अभिलाषा है, तो स्वदेशी व्यापारको उत्तेजन देनेके लिये—उसकी चरमोन्नति करनेके लिये-पूर्णत विदेशी वस्तुओंका बहिष्कार करना चाहिये। व्यापारके हाथमें आतेही अँगरेज इतने बलवान् न रह सकेंगे। व्यापार अपना होगा। देशके एक अति गरीब समुदायकी प्राण रक्षा-का उपाय मिल जायेगा। स्वदेशीका आरंभ स्वदेशी वस्त्र तैयार करानेसे होता है। ये वस्त्र चरखेके सूत और करघे द्वारा तैयार होने चाहिये।

पाँचवाँ विभाग सरकारी नौकरियाँ छोड़ना और सरकारी [illegible]ोंका परित्याग करना है। ये सब जानते हैं, कि अँगरेजी [illegible]को दृढ़ बनाये रखनेवाले अँगरेज नहीं वरन् जो हुजूरा

आन्दोलन करनेवाले नेताओंमें जियाद तर वकीलही हैं, तथापि मैं जानता हूँ कि जब सरकारकी प्रवृत्तियोंको रोकनेकी बात आती है, तब सरकार अपनी मान रक्षाके लिये वकीलोंकाही मुँह ताकती है और वेलोग उसे उसकी कुप्रवृत्ति तद्वत् रखनेमें सहायता करते हैं। अतएव उनके द्वारा सच्चा देशोपकार नहीं हो पाता। बेहतर है, कि हमारे वकील भाई ऐसी दोरगी चालें न चलें और सरकारकी कृपाका मोह त्याग गरीबोंका खून चूसनेवाली वकालतका सर्वथा परित्याग करदें। क्योंकि सच्चा देशोद्धार उनके ऐसा करनेसे ही होगा।

असहयोगका तीसरा विभाग सरकारी स्कूलोंका बहिष्कार है। इसका खुलासा मतलब है—प्रजाका अपने बालकोंको सरकारी स्कूलोंसे उठा लेना, कालेजोंके छात्रोंको कालेजोंसे अलग कर लेना एव सरकारी सहायता प्राप्त करनेवाली अर्द्ध सरकारी पाठशालाओंको छोड़ देना। वर्त्तमान स्कूलोंसे सरकारके कामलायक नौकर ढलते हैं, अतएव इन नौकर ढालनेवाली मशीनोंको एक दम चकना-चूर कर देना चाहिये। क्योंकि ऐसा होनेसे अपने पुराने ढँगकी, मूलत श्रेष्ठ जातीय पाठशालाओंको उत्तेजन मिलेगा, जातीय शिक्षाका प्रचार होगा और उसी शिक्षासे शिक्षित नव युवकगण सच्चे भारतीय होंगे।

चौथा विभाग विदेशी बहिष्कार और स्वदेशी-प्रचार है, जिन लोगोंने अँगरेजोंके भारतमें आनेका इतिहास पढा होगा, अथवा जो इतिहास प्रेमी हैं, वे जानते होंगे, कि भारतमें अँगरेज पहले

मैं स्पष्ट हूँ, क्योंकि उसकी वर्तमान नीतिमें अनीति, ओछापन और असत्य भरा हुआ है। पर सच जानना, मैंने चिरकालतक विचार करकेही इस सिद्धान्तको स्थिर किया है। मैं ब्रिटिश राज्यका शत्रु नहीं, परन् सच्चा मित्र हूँ। किन्तु उसकी वर्त्तमान नीति मुझे पसंद नहीं है। मुझे आवश्यकता है, अभिन्नता-की या समता की। यदि सरकारकी आँखोंमें भारतीयोंके प्रति सम्मानका भाव नहीं है, तो मैं अपने असहयोग द्वारा—सत्या ग्रहद्वारा—उसकी भूल दिखाऊँगा। यदि वह इस भूलका संशोधन करना नहीं चाहती, तो मुझे भी उसके साथ सम्बन्ध रखनेकी आवश्यकता नहीं है। इस नीतिका अवलम्बन करते हुए, यदि अँगरेजोंको निकाल देनेके कारण, देशमें कुछ समयके लिये मुझे अव्यवस्थाका सामना करना पड़े, तो मैं उसे भी भोग लूँगा; परन्तु अँगरेज जैसी बड़ी जातिके हाथसे अन्याय नहीं ले सकता। तुम देखोगे कि, समय आनेपर यह असहयोग खूब ज़ोर पकड़ेगा और सरकार इसका गला घोंटेगी; पर हमें प्राणान्त होनेपर भी पस्तहिम्मत न होना चाहिये और असह-योगकी समस्त धाराओंका पूर्णत पालनकर, शीघ्रही स्वराज्य ले लेना चाहिये

हो जायँ, तो कुछ लाख अँगरेज तीस करोड़ जनतापर शासन करनेके लिये काफी न होंगे। अस्तु, कहनेका मतलब यह है, कि प्रजाके शिक्षित समुदायका इस समय यही कर्त्तव्य है, कि फ्रान्सकी प्रजाने जिस प्रकार फ्रान्सकी राज्य क्रान्तिके समय जो काम कर दिखाया था, उसने उस समय जिस प्रकार शासनकी लगाम अपने हाथमें लेली थी, उसी प्रकार हम भी असहयोगकी लगाम अपने हाथमें लेलें। परिणाममें विजय-सर्वथा निश्चित है। मैं फ्रान्सकी क्रान्तिका समर्थन नहीं करता। मैं तो प्रगति चाहता हूँ। मुझे अव्यवस्थित व्यवस्था नहीं चाहिये। मुझे अन्धाधुन्ध भी नहीं चाहिये। मुझे तो इस समय व्यवस्था सी दीखनेवाली अन्धाधुन्धीमेंसे सच्ची व्यवस्था निकालनी चाहिये। यदि वह व्यवस्था अत्याचारी राज्यकी जुल्मी लगाम को हथियानेके लिये स्थापित की हुई व्यवस्था हो, तो मेरे मतानुसार वह भी अव्यवस्थाही है। मैं तो अन्यायोंमेंसे न्याय प्राप्त करना चाहता हूँ। इसीसे मैं तुम्हें निवृत्ति प्रधान असहयोग करनेकी सलाह देता हूँ। यदि इस शान्त, किन्तु रामवाण तुल्य मार्ग का रहस्य हमलोग भले प्रकारसे समझ लेंगे, तो तुम देखोगे, कि हमें किसीको एक भी कटुशब्द कहनेकी आवश्यकता न होगी। सरकार हमारे ऊपर तलवार उठायेगी, पर हमें उस के सामने छोटीसी लकड़ी ले कर एक उँगली हिलानेकी भी जरूरत न होगी।

तुम्हें मेरे इस असहयोगमें विद्रोह दीख पड़ेगा। सरकारसे

मैं रुष्ट हूँ, क्योंकि उसकी वर्त्तमान नीतिमें अनीति, ओछापन और असत्य भरा हुआ है। पर सच जानना, मैंने चिरकालतक विचार करकेही इस सिद्धान्तको स्थिर किया है। मैं ब्रिटिश राज्यका शत्रु नहीं, वरन् सच्चा मित्र हूँ। किन्तु उसकी वर्त्तमान नीति मुझे पसंद नहीं है। मुझे आवश्यकता है, अभिन्नताकी या समता की। यदि सरकारकी आँखोंमें भारतीयोंके प्रति सम्मानका भाव नहीं है, तो मैं अपने असहयोग द्वारा—सत्याग्रहद्वारा—उसकी भूल दिखाऊँगा। यदि वह इस भूलका संशोधन करना नहीं चाहती, तो मुझे भी उसके साथ सम्बन्ध रखनेकी आवश्यकता नहीं है। इस नीतिका अवलम्बन करते हुए, यदि अंगरेजोंको निकाल देनेके कारण, देशमें कुछ समयके लिये मुझे अव्यवस्थाका सामना करना पड़े, तो मैं उसे भी भोग लूँगा, परन्तु अंगरेज जैसी बड़ी जातिके हाथसे अन्याय नहीं हो सकता। तुम देखोगे कि, समय आनेपर यह असहयोग पूरा ज़ोर पकड़ेगा और सरकार इसका गला घोंटेगी, पर हमें प्राणान्त होनेपर भी पस्तहिम्मत न होना चाहिये और असहयोगकी समस्त धाराओंका पूर्णतः पालनकर, शीघ्रही स्वराज्य ले लेना चाहिये।



जायें, तो कुछ लाख अँगरेज तीस करोड़ जनतापर शासन करनेके लिये काफी न होंगे। अस्तु, कहनेका मतलब यह है, कि प्रजाके शिक्षित समुदायका इस समय यही कर्त्तव्य है, कि फ्रान्सकी प्रजाने जिस प्रकार फ्रान्सको राज्य क्रान्तिके समय ... काम कर दिखाया था, उसने उस समय जिस प्रकार शासनकी लगाम अपने हाथमें लेली थी, उसी प्रकार हम भी असहयोगकी लगाम अपने हाथमें लेलें। परिणाममें विजय सर्वथा निश्चित है। मैं फ्रान्सकी क्रान्तिका समर्थन नहीं करता। मैं तो प्रगति चाहता हूँ। मुझे अव्यवस्थित व्यवस्था नहीं चाहिये। मुझे अन्धाधुन्ध भी नहीं चाहिये। मुझे तो इस समय व्यवस्था-की दीखनेवाली अन्धाधुन्धीमेंसे सच्ची व्यवस्था निकालनी चाहिये। यदि वह व्यवस्था अत्याचारी राज्यकी जुल्मी लगाम को हथियानेके लिये स्थापित की हुई व्यवस्था हो, तो मेरे मतानुसार वह भी अव्यवस्थाही है। मैं तो अन्यायोंमेंसे न्याय प्राप्त करना चाहता हूँ। इसीसे मैं तुम्हें निवृत्ति प्रधान असहयोग करनेकी सलाह देता हूँ। यदि इस शान्त, किन्तु रामबाण तुल्य मार्ग का रहस्य हमलोग भले प्रकारसे समझ लेंगे, तो तुम देखोगे, कि हमें किसीको एक भी कटुशब्द कहनेकी आवश्यकता न होगी। सरकार हमारे ऊपर तलवार उठायेगी, पर हमें उस के सामने छोटीसी लकड़ी ले कर एक उँगली हिलानेकी भी जरूरत न होगी।

तुम्हें मेरे इस असहयोगमें विद्रोह दीख पड़ेगा। सरकारसे

होनेके कारण उसकी सारी विद्वत्ता धूलमें मिल गयी थी। यदि कहो कि, आचारवान् बननेके लिये शक्तिकी आवश्यकता है, तो रावणमें शक्तिकी भी कमी न थी। उसने अपनी अजेय शक्तिके प्रतापसे एक दिन सारे विश्वको जीत लिया था। अतएव सिद्ध हुआ कि, आचारके लिये न तो विद्याकी आवश्यकता है और न शक्ति की। यदि कोई सदाचारी है, तो उसका तेज हजार विद्वानोंकी विद्याके तेजसे भी तीव्र होगा। संसारके भूत-पूर्व महापुरुषगण विद्या या शक्तिके कारण प्रसिद्ध नहीं हुए। कृष्ण और राम, बुद्ध और शंकर, प्रताप और शिवाजी, सबकी प्रसिद्धि केवल सदाचारके प्रतापसे हुई है।

"नवीन शिक्षाके दोषसे यद्यपि विद्याके आगे सदाचारकी कीमत घट गयी है, पर इसका यह मतलब न निकालना चाहिये कि, सदाचारपर कोई विजय प्राप्त कर सकता है।

"मैं दो ऐसे व्यक्तियोंको जानता हूँ, जिनमेंसे एकमें असाधारण विद्या मौजूद है; दूसरे एकदम निरक्षर होते हुए भी अपने आचरणके कारण जनताके हृदय-सम्राट् हैं। ऐसे लोग जिस समय भी किसी कामके करनेकी प्रतिज्ञा करते हैं, वे उसे तत्काल पूर्ण कर देते हैं। उनकी प्रतिज्ञा यदि किसी कारणसे असिद्ध भी हुई, तो भी एकसी रहेगी, वे फलके प्रत्याशी होंगे, पर असिद्धिसे कभी अपनी नीतिमत्ताका त्याग न करेंगे। आन्दोलन करनेकी शक्ति—युद्ध करने योग्य पराक्रम—केवल सदाचारियोंमेंही है।

सोलहवाँ अध्याय

असहयोग सिद्धिके साधन।

पाठकने पूछा,—"महाराज! आपने जो असहयोगका कार्य्यक्रम बताया, क्या वह भारतीय जनता द्वारा स्वीकृत और कार्य्यमें परिणत हो सकता है? यदि हो सकता है, तो कृपाकर बताइये, उसके क्या साधन हैं?"

महात्मा गान्धीने कहा,—"देखो भाई! असहयोग स्वतन्त्रता प्राप्तिका अन्तिम सोपान अथच सब उपायोंसे कठिन है। इसकी साधना करनेके लिये बड़े बड़े संयमोंकी आवश्यकता है। मैंने इनकी सिद्धिके कई विभाग किये हैं। मैं तुम्हें इन विभागोंके नाम और उनके उपयोगकी विधि संक्षेपमें बतलाऊँगा। आशा है, तुम उसपर ध्यान दोगे और समय मिलनेपर मनन करोगे।

"देखो, मैं प्रत्येक विषय दृष्टान्त दे देकर समझाऊँगा। तुम उसीसे मेरे कथनका साराश निकाल लेना। असहयोग साधनका सर्व प्रधान साधन आचार है। आचार विद्वत्ताकी अपेक्षा नहीं करता। यदि आचारवान् बननेके लिये विद्वत्ताकी आवश्यकता हो अथवा दूसरे शब्दोंमें विद्या पढ़नेसे प्रत्येक मनुष्य आचारवान् बन सकता हो, तो रावण जैसा धुरन्धर विद्वान् अनाचारी न होता। उसमें यह अनाचारिता, और फिर वह भी सीमासे बाहर,

यज्ञको सफल बनानेके लिये पहले इन सब आचारोंका बलिदान कर, सदाचारी बनना पड़ेगा।

"प्रणवीर प्रताप यद्यपि राजा थे, परन्तु जब उन्होंने स्वदेशोद्धारका व्रत ग्रहण किया, तो उन्होंने सारे भोगोंको त्याग कर संन्यास-व्रत ग्रहण कर लिया था। वे तीस वर्ष तक ऋषि मुनियोंकी तरह जीवन बिताते रहे और मृत्यु भी उनकी इसी अवस्थामें हुई, पर व्रतका भङ्ग उन्होंने किसी समय भी नहीं किया।

"असहयोगको साधारण व्रत न समझना चाहिये। यह चायोंका प्याला खाली करते या सिगरेटोंका धुआँ बढाते उड़ाते पूर्ण न होगा, वरन् इसके लिये हमें प्रसन्नतासे संसारके भारी से भारी कष्ट भोगनेके लिये तैयार रहना पड़ेगा।

सदाचारी लोग मनको अपने वशमें रखनेके लिये सदा सद्-विचार किया करते हैं। शहरके दृश्योंसे हटकर निर्जन स्थान, —विशेषकर गंगा तटपर, निवास किया करते हैं। व्यर्थकी बातें न कर, मौन-व्रत धारण पूर्वक अपना कर्तव्य पालन किया करते हैं। मादक द्रव्य उनका कभी स्पर्श भी नहीं करने पाते। क्योंकि ये सब मनुष्य योनिसे पशु योनिमें ले जानेवाले हैं। इनसे धन नाश होता है, इन्द्रियोंमें उद्दण्डता आती है।

सदाचरण व्यभिचारका सत्यानाशकर, देशमें ब्रह्मचर्यकी प्रतिष्ठा करता है। जो देश एक समय यम नियमका केन्द्रस्थान था—जहाँ ब्रह्मचर्यने महिमा प्राप्त की थी—जहाँ लक्ष्मण, भीष्म जैसे योद्धाओंने केवल ब्रह्मचर्य

"सदाचारी लोग परार्थके लिये स्वार्थका बलिदान करते हैं, नम्रताके लिये अहङ्कारकी आहुति देते हैं एवं प्रसन्नतासे संसारके भारी से-भारी कष्टोंका वरण करते हैं। काम, क्रोध, लोभ और मोह उन्हें स्वप्नमें भी नहीं व्यापता। इन्द्रयोंके अत्याचार उन्हें कभी परेशान नहीं करते। अतएव उनकी शक्तियाँ हजार गुनी बढ़ जाती हैं।

"मत भूलो कि, संसारका कोई भी कार्य्य बिना सदाचारके सफल न हो सकेगा।

"पूर्व कालमें जो लोग साधारणसे भी साधारण यज्ञानुष्ठान करते थे, उन्हें महीनों सदाचारकी साधना करनी पड़ती थी। असहयोग तो महायज्ञ है। इसके लिये प्रत्येक व्यक्तिको-भारतके बच्चे बच्चेको सदाचारी बननेकी आवश्यकता है।

"वर्त्तमान पाश्चात्य सभ्यताके कारण आजकल हममें असंख्य अनावश्यक विहार जड़ पकड़ गये हैं। यद्यपि हम क्षीण होते जाते हैं, तथापि चाय, काफी, सोडावाटर, पान, तम्बाकू और सिगरेट आदि सत्यानाशी वस्तुओंका उपभोग दिन-पर-दिन बढ़ता जा रहा है। इन अनावश्यक भोगोंसे आयुका ह्रास, शक्तियोंमें क्षीणता तो आतीही है, साथही पाप भी कम नहीं होता। इन पापोंके कारण हमारे स्वर्गवासी पितरगण आँखोंमें आँसू भरे स्वर्गसे स्खलित हो रहे हैं। हम गुलामी करते हैं, शक्तिशालियोंकी शक्तियोंसे पिस रहे हैं, तथापि शौक किये बिना हमारा मन नहीं मानता। असहयोगियोंको अपने

अजेय ब्राह्मणत्व केवल ब्रह्मचर्य्यके प्रतापसे प्राप्त किया था। सारांश यह कि, भारतके प्रत्येक यज्ञकी पूर्णाहुति एकमात्र ब्रह्मचर्य्यके प्रतापसेही हुई है। बौद्धोंके खिलाफ आन्दोलनकर, उसपर पूर्ण विजय पानेवाले भगवान् शङ्कर अखण्ड ब्रह्मचारीही थे। उन्होंने अकर्मण्यताकी ओर अग्रसर होती हुई हिन्दू जातिका नेतृत्व ग्रहणकर, जिस बलसे वेद-धर्मकी प्रतिष्ठा की थी, वह बल एकमात्र ब्रह्मचर्य्यही था। यदि आज भारत अपने उस पुराने बलको अपनाकर अपने जीवनकी गति सुधार ले, तो असहयोगका यज्ञ, जिसका मेरुदण्ड आत्मबल और संयम है, अवश्य सफल हो सकता है।

"तीसरा दृष्टान्त मैं संयमका दूँगा। संयम तामसिक भोजन, क्रोध, असत्य-भाषण और अविचारका नियामक है। आज भारतमें संयम न होनेके कारणही—रसनाकी लालसा-पूर्तिके लियेही—करोड़ों पशुओंकी हत्या होती है। यद्यपि वे लोग भी आज इस जघन्य भोजनके दुष्परिणामोंको शतमुखसे घोषित कर रहे हैं, जो आधुनिक आसुरी सभ्यताके आचार्य्य हैं, तथापि लोग अन्धे हुए अपनी आसुरी वृत्तिको चरितार्थ करही रहे हैं। पशुओंके वधसे देशकी आर्थिक दशाको कैसा विकट धक्का लग रहा है, वे वे नहीं समझते। जब हम स्वराज्य प्राप्तिके लिये इतने लालायित हैं कि, अपना सर्वस्व स्वाहा करनेके लिये भी तैयार हैं, तब क्या स्वराज्यकी पहली सीढ़ी आर्थिक स्थितिको सुधारनेके लिये हमारा प्रयत्न करना उचित न होगा?

भारतको प्रतिष्ठा दिलायी थी, वही देश—वही स्थल—आज व्यभिचारका केन्द्र होरहा है। वे महापुरुष, जो आजकल दूसरोंको उपदेश देनेका काम कर रहे हैं, वे भी इस दोषसे अछूते नहीं हैं, फिर साधारण लोगोंको तो कौन कहे। भारत जानता है कि, व्यभिचारका अन्त कैसा बुरा है, इतनेपर भी लोगोंकी आँखें नहीं खुलतीं। संयम तो हम लोगोंमेंसे मानो उठही गया है। इसीसे हम निस्तेज हैं। आत्मबल शून्य हैं। आत्म बल न होनेसे हमारी कोई भी प्रतिज्ञा पूरी नहीं होने पाती।

शास्त्रमें कहा है,—"ब्रह्मचर्य्य प्रतिष्ठायां वीर्य्यलाभ"—ब्रह्मचर्य्य धारण करनेसे वीर्य्य-लाभ होता है। वीर्य्यकी प्राप्तिसे आत्मामें तेजका प्रकाश बढ़ता है, उस तेजसे हम असाधारण बलशाली और महान् कष्ट सहिष्णु बन सकते हैं। चंचल मनपर-उस मनपर—जो हमें असंयत होनेके कारण दिन-रात पाप-पथपर दौड़ाया करता है, अधिकार जमा सकते हैं। यदि आज हम ब्रह्मचारी होते, तो संसारकी सामान्य, घृणित, भौतिक बल-पूर्ण जातियोंके सामने लाञ्छित न होना पड़ता।

"ब्रह्मचर्य्य चिरस्थायिनी आरोग्यता, दीर्घजीवन, स्वर्गीय सौन्दर्य्य और देवताओंके जैसे ऐश्वर्य्यका विधायक है। उससे प्रत्येक मनुष्यकी भावी कामनाओंका नियन्त्रण होता है। संसारकी जातियोंमें एकदिन हिन्दूजाति, एकमात्र ब्रह्मचर्य्यके कारण ही आर्य्यजाति साबित हुई थी। रामने आदर्श पुरुषत्व, कृष्णने उत्तम योगित्व, भीष्मने निर्मल धर्म-बुद्धि और परशुरामने

अजेय ब्राह्मणत्व केवल ब्रह्मचर्य्यके प्रतापसे प्राप्त किया था। सारांश यह कि, भारतके प्रत्येक यज्ञकी पूर्णाहुति एकमात्र ब्रह्मचर्य्यके प्रतापसेही हुई है। बौद्धोंके खिलाफ आन्दोलनकर, उसपर पूर्ण विजय पानेवाले भगवान् शङ्कर अखण्ड ब्रह्मचारीही थे। उन्होंने अकर्मण्यताकी ओर अग्रसर होती हुई हिन्दू जातिका नेतृत्व ग्रहणकर, जिस बलसे वेद-धर्मकी प्रतिष्ठा की थी, वह बल एकमात्र ब्रह्मचर्य्यही था। यदि आज भारत अपने उस पुराने बलको अपनाकर अपने जीवनकी गति सुधार ले, तो असहयोगका यज्ञ, जिसका मेरुदण्ड आत्मबल और संयम है, अवश्य सफल हो सकता है।

"तीसरा दृष्टान्त मैं संयमका दूँगा। संयम तामसिक भोजन, क्रोध, असत्य-भाषण और अनिचारका नियामक है। आज भारतमें संयम न होनेके कारणही—रसनाकी लालसा-पूर्त्तिके लियेही—करोड़ों पशुओंकी हत्या होती है। यद्यपि वे लोग भी आज इस जघन्य भोजनके दुष्परिणामोंको शतमुखसे घोषित कर रहे हैं, जो आधुनिक आसुरी सभ्यताके आचार्य्य हैं, तथापि लोग अन्धे हुए अपनी आसुरी वृत्तिको चरितार्थ करही रहे हैं। पशुओंके वधसे देशकी आर्थिक दशाको कैसा विकट धक्का लग रहा है, ये वे नहीं समझते। जब हम स्वराज्य प्राप्तिके लिये इतने लालायित हैं कि, अपना सर्वस्व स्वाहा करनेके लिये भी तैयार हैं, तब क्या स्वराज्यकी पहली सीढ़ी, आर्थिक स्थितिको सुधारनेके लिये हमारा प्रयत्न करना उचित न होगा ?

"असहयोग-सिद्धिका एक और प्रधान उपाय है-वह है, परस्परका सहयोग। लोग, आजकल विजातीय लोगोंसे सहयोग करनेकी दुहाई दे रहे हैं, पर सच पूछो, तो उनका अपने घरवालों और पड़ोसियोंके साथही सहयोग नहीं है। हम सेवा समितियाँ खोलकर दूसरोंकी सेवा करनेका बीड़ा उठा रहे हैं, पर घरके माता पिता, जो बरसोंसे रुग्ण-शय्यापर पड़े-पड़े दु:खसे कराह रहे हैं, उनकी सेवा करनेकी ओर हमारा तनिक भी ध्यान नहीं। इस प्रकारकी सेवाको मैं दूकानदारी या ढोंग कहूंगा। ऐसी सेवा केवल नाम पानेका जरिया ही है। बड़े बड़े शहरोंमें देखा गया है कि, तीन-तीन मञ्जिलोंके मकानोंमें बीसों परिवार रहते हैं। एक परिवार अन्न कष्ट और रोगोंकी यन्त्रणाओंसे रो रहा है और दूसरे परिवारके लोग परस्परमें बैठ कर गा-बजा रहे हैं। इस प्रकारका आचरण सहयोग या सहानुभूतिके अभाव का प्रधान लक्षण है, दूसरे शब्दोंमें भारतके लिये यह भीषण कलङ्क है। जब हम संसारकी एक बलिष्ठ और शक्ति शालिनी ... से अपने प्राप्य अधिकार पानेके लिये असहयोग-संग्राम छेड़नेके लिये तत्पर हैं, तब हममें इस प्रकारकी एकताका न होना, असिद्धिका द्योतक है। अत: हमारा कर्त्तव्य होना चाहिये कि, हम पहले घरवालोंके सुख दु:खमें सहयोग प्रदान करें और बादको पड़ौसी और नागरिक भाइयोंकी सहायता करें। यही सच्चा सेवा-धर्म है और इस प्रकारके धर्मका पालन करकेही हम परस्परकी सहानुभूति प्राप्त कर सकते हैं एवं सहानुभूति

प्राप्त करनेसेही हमारा यह असहयोग-अनुष्ठान सिद्ध हो सकता है।

"एक उपाय व्यापारी और छोटे पेशेवालोंके बीचका भेद भावका नाश है। वर्तमान शासन-पद्धतिके दोषानुसार भारतके व्यापारी और मजदूरोंमें जो भेद भाव घर कर गया है, उनसेभी हमारी अनन्त क्षति हो रही है।

"भारतमें गरीबीका साम्राज्यसा फैला हुआ है। यहाँ वैसे ही लोगोंकी सख्या सर्वाधिक है, जिन्हें भरपेट भोजन मिलना तो एक ओर, आधारके लिये मुट्ठीभर अन्नभी मयस्सर नहीं। शीत कालमें इन लोगोंकी दशा बड़ीही शोचनीय,अतएव दयनीय होती है। ये लोग उन दिनों पेटमें घुटने लगाकर और आगके चारों ओर बैठकर जागते-जागते रात बिताया करते हैं। भारतमें मृत्यु-संख्याकी वृद्धि करनेवाले येही लोग हैं। प्लेग, निमोनिया और इन्फ्लुएञ्जा जैसी मारात्मिका व्याधियाँ इन्हीं लोगोंपर छापा मारती हैं। मैं कहूँगा, इन बीमारियोंके जनक और इस प्रकारकी दरिद्रताके विधायक देशके पूँजीपति व्यापारीही हैं। इन लोगोंका ईश्वर स्वार्थ है। स्वार्थके लिये ये भारीसे भारी पाप करनेमेंभी सकोच नहीं करते। देश मरे या जिये, पर ये अपने स्वार्थका नाश न होने देंगे। उनके इस दृष्टि-कोणको देखकर मैं कहूँगा कि, देशकी उन्नतिसे इनका कोई सम्बन्ध नहीं है। ये देशोन्नति नहीं चाहते, चाहते हैं—स्वार्थ सिद्धि। मैं चाहता हूँ, किसी तरह इन लोगोंकी आँखें खोली जायें। इनकी आँखें खुलनेसेही

देशकी नित्य-व्यावहारिक वस्तुएँ सस्ती हो सकती हैं। साथ वस्तुएँ और वस्त्रादिके सस्ते होनेसेही देशका गरीब समुदाय देशोन्नतिके कार्य्योंमें सहयोग प्रदान कर सकेगा। यह समय है, देशके व्यापारियोंके कर्त्तव्य पालनका। जब देशके प्रतिष्ठितसे प्रतिष्ठित व्यक्ति अपने स्वार्थही नहीं, सर्वस्व तककी बलि चढ़ानेके लिये तैयार हैं, तब देशके व्यापारी, जिनका स्वार्थही नहीं, वरन् जीवन-निर्वाहतक देश-वासियोंके कल्याणके साथ आबद्ध है,क्या कुछ समयके लिये स्वार्थपर पदाघातकर, परोपकार वृत्ति अवलम्बन नहीं कर सकते? यदि वे चाहें तो अवश्य कर सकते हैं। क्योंकि विदेशीय क्रान्तियोंके इतिहासमें ऐसे उदाहरण अप्राप्य नहीं हैं। जब समस्त देशोंमें व्यापारियोंने देश-हितके लिये स्वार्थका बलिदान किया है, तब भारतके व्यापारी लोग भी कुछ दिनोंके लिये अपने स्वार्थका बलिदान करें। उनके ऐसा करनेसेही असहयोग-यज्ञकी पूर्णाहुति हो सकेगी।"



सत्रहवाँ अध्याय

उद्देश्यकी सफलता।

युवकने कहा,—"महाराज! अभी आपने जो भाषण दिया, उसमें कहे हुए असहयोग सिद्धिके उपाय क्या आसानीसे सफल हो सकते हैं?"

महात्माजीने कहा,—"साधारण दृष्टिसे एक तुमही नहीं, बड़े बड़े बुद्धिमान इस यज्ञकी सफलतापर सन्देह करेंगे, पर यदि मेरे कथनानुसार कार्य्य किया जाये, तो सफलता मिलनेमें कोई सन्देह नहीं है। तथापि उस सफलतामें एक रहस्य छिपा हुआ है।

"देखो, हम सरकारसे युद्ध कर रहे हैं। इस युद्धमें देखनेकी बात यही है कि, शत्रुमें कितनी शक्ति है। शक्ति या बलाबल की परीक्षा करना, यह युद्ध नीतिका पहला उद्देश्य है। पूर्वमें भारतके नीतिज्ञ राजालोग शत्रुकी सेना, उसकी युद्ध सामग्री और तैयारियोंका पता लगानेके लिये गुप्तचर छोड़ा करते थे, पर हमारे शत्रुका बलाबल हमपर पहलेसेही प्रकट है। अब देखना यह है कि, हम उसके बलसे किस प्रकार सामना कर सकते हैं अथवा शत्रुका कौनसा और किसतरह किया हुआ आक्रमण हमें गिरा सकता है एवं हम उसका किस तरह सहार कर सकते हैं।

"अब शत्रुके बलाबलका विचार कीजिये। देखिये, शत्रुके पास प्रत्यक्षमें इतने बल हैं—(१) शिक्षालय (२) कौन्सिलें (३) कानून (४) न्यायालय और (५) व्यापारिक वस्तुएँ।

"हमपर आक्रमण करनेके लिये उसके पास ये तीन शक्तियाँ हैं—(१) जेल (२) राजनैतिक कानूनकी धाराएँ और (३) अस्त्र शस्त्र।

"अँगरेज—सरकार कूटनीतिके बलपर हमारे ऊपर शासन करती है। उसके पास ऊपर कहे हुए पाँच प्रधान बल और तीन अव्यर्थ शक्तियाँ हैं। वह उक्त बल और शक्तियोंकी बदौलत चाहे तो मनमाना अत्याचार कर सकती है, पर वह है कूटनीतिज्ञ। अतः प्रकटमें एकाएक वह हमपर आक्रमण न करेगी। हाथमें रहते हुएभी अपने अस्त्रोंका अनियमसे प्रयोग न करेगी। बस, हमारी सफलता उसकी इस रुकावटमें ही छिपी हुई है।

"हम पीछे कह आये हैं कि, सरकारपर हम निम्नलिखित प्रकारसे हमला करेंगे।

"(१) समस्त सरकारी शिक्षालयोंका बहिष्कार किया जायेगा (२) उसकी कौन्सिलें हिन्दुस्थानी मेम्बरोंसे खाली हो जायेंगी (३) उसे किसी प्रकारसेभी टैक्स न दिये जायेंगे (४) उसके अन्याय-मूलक कानून न माने जायेंगे (५) उसकी वस्तुओंको अछूत और हानिकर समझकर त्यागदेंगे (६) न्यायालयों या कचहरियोंमें न जाकर अपनी स्वतन्त्र पञ्चायतें बनायेंगे (७) स्वदेशी वस्तुएँ ही व्यवहारमें लायें और (८) सब प्रकारके कष्ट सहनेके लिये तैयार रहेंगे।

इन हमलोंमें कई हमले ऐसे हैं, जिनपर सरकारके सभी आक्रमण और शस्त्र व्यर्थ होंगे। दो तीन ऐसे हैं, जिनपर वह अपनी छलपूर्ण चालोंसे धावा कर, रुकावटें उपस्थित कर सकती है—तथापि यदि हमलोग अपना प्रत्येक आक्रमण चारों ओर ख्याल रखते हुए,—सब ओरसे सतर्क रहते हुए—करेंगे तो हमपर कोई भी छलपूर्ण चाल कारगर न होगी।

रहा शस्त्र प्रयोग। सरकार यदि चाहे, तो हमारे विरुद्ध इस बलका मनमाना प्रयोग कर सकती है एवं इस बलके सामने हम सर्वथा पराजित हो जा सकते हैं; किन्तु जीतकी बात तो यह है कि, सरकार स्वेच्छासे—बिना कोई कारण पाये—ऐसा नहीं कर सकती। हमारा संग्राम पूर्णतः अहिंसात्मक होगा। अतएव हम उसे कोई ऐसा अवसर न मिलने देंगे, जिससे वह अपनी स्वेच्छाचरिता चरितार्थ कर सके।

तब वह क्या कर सकती है? कर सकती है यह कि, वह असहयोग-संग्रामको अवैध बनाकर, हमारे सैनिकोंको जेल भेजने लगे, अथवा हमारे ऊपर जुर्माने करके माल कुर्क करा ले; इससे अधिक वह कुछ भी नहीं कर सकती। इसके अलावा उसके पास कितना ही बल हो, पर वह हमारे इस संग्राममें व्यर्थ साबित होगा। आप लोग जेल और मालकी कुर्कीसे तनिक भी न डरिये। यदि आपने सरकारके इन दोनों अस्त्रोंको अपने ऊपर ओट लिया, तो आप देखेंगे कि, वह कितनी परेशान होगी। याद रखिये, सरकारने यदि ऐसा किया, तो अपने

पैरोंपर अपने आप कुल्हाडी मारनेकी कहावत चरितार्थ होगी।' यह कैसे ? सो सुनिये।

मान लीजिये कि, आप असहयोग संग्रामके एक सैनिक हैं, सरकारने कोई जुर्म लगाकर आपको जेल भेज दिया। पर जेल भेजना उसका तब सार्थक होगा, जब वह अकेले आपको ही जेल भेजे, किन्तु यहां तो भारतका बच्चा बच्चा असहयोगी होगा। तब क्या सरकार सारे भारतको जेल भेजेगी ?—क्या सारे भारतका माल कुर्क करायेगी ? यदि करायेगी, तो उसे खरीदनेवालाही कौन मिलेगा ? बस, सरकारके परेशान होनेका यही रास्ता है और ऐसा होनेसेही हमारी जीत हो सकेगी।

मैं यहां आँखों देखी बातका उदाहरण देकर इस बातकी पुष्टि करूंगा। आपको खेड़ेके मामलेकी बात याद होगी। वहां किसानोंने फसल न होनेके कारण लगान देनेसे इनकार किया। सरकारको हमलोगोंने बहुतेरा समझाया कि, वह किसानोंकी आपत्तिके अनुसारही कार्य्य करे, पर सरकारने किसीकी एकभी न सुनी। उसने किसानोंका माल कुर्क करा कराकर नीलाम कराना चाहा। किसानोंने उसके इस कार्य्यमें कोई भी रुकावट नहीं डाली। अमीनलोग बोली बोलते-बोलते परेशान हो गये, पर उन्हें कोई खरीदार न मिला। अन्तमें किसानोंकी विजय हुई। लगान छोड़ दिया गया।

साराश यह कि, हमारे इस संग्राममें शान्तिकी सर्वाधिक

आवश्यकता है। यदि आपने तनिक भी उत्तेजनासे काम लिया, तो सच जानिये, सरकारको तलवार निकालनेका मौका मिल जायेगा और उस समय हम बात-की बातमें धराशायी कर दिये जायेंगे। अतएव हमें ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि, जिससे बलशाली होते हुए भी अँगरेज लोग बयाहिज होजायें। और यह सच है कि, यदि हम थोड़ीसी भी सावधानी, शान्ति और बुद्धिमानीसे अपना युद्ध जारी रखेंगे, तो सरकारका सारा बल व्यर्थ जायेगा। जो लोग सरकारसे डरते हैं, उसे हव्वा समझते हैं, वे वे समझ हैं। हमारा युद्ध हमारेही कृत्योंसे विजयी होगा। सरकार हमारे सहयोगकी मुहताज है। जबतक हम उसके साथ हैं, तबतक वह संसारकी प्रबल-से प्रबल शक्तिका मुकाबला कर सकती है; पर जिसदिन हम उसमे सहयोग करना त्याग देंगे, उसदिन उसकी सारी अजेयता धूलमें मिल जायेगी।

फिर हमारे सहयोग त्यागनेमें कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता। हम अपने लड़कोंको सरकारी विद्यालयोंमें नहीं पढाते; उसमें क्या किसीका इजारा है? हम कौन्सिलके मेम्बर नहीं बनना चाहते, सरकारकी खुशामदें कर, उपाधि या खिताब नहीं लेना चाहते, यह क्या कोई अपराध है? हम विलायती चीज नहीं खरीदते, क्या कोई जबर्दस्ती है? अदालत नहीं जाते, घरमेंही अपने झगड़ोंका फैसला करना चाहते हैं, सरकारको इसमें क्या ऐतराज? सरकारी नौकरी करना पाप है, हम उसे नहीं चाहते। हम अपने घर राजी और सरकार अपने घर राजी। यदि नाराज है,

तो हमें जेल भेज दे। देखें तो जेलमें कितनी गुञ्जाइश है? हम स्वदेशी वस्तु ग्रहण करते हैं, टैक्स न देने और अपमानकारी कानून न माननेसे फाँसी नहीं मिल सकती। बहुत होगा तो माल कुर्क होजायेगा। इनसे ज़ियाद कुछ नहीं हो सकता, सब खुदको तय्यार हैं। इनसे हमारा कुछ भी न बिगड़ेगा। बस, यही हमारे युद्धकी सफलताका रहस्य है। भारतके प्रत्येक समझदार व्यक्तिको इसे बुद्धिमें बैठा लेना चाहिये। और इसीके अनुसार काम करना चाहिये।"



अठारहवाँ अध्याय

उपसंहार।

इस प्रकार युवक और महात्मा गान्धीमें भारतवर्ष तथा उसकी उन्नतिके विषयमें प्रश्नोत्तर रूपसे जो संवाद हुआ, युवकके हृदयपर उसका प्रभाव आश्चर्य रूपसे पड़ा एवं उस प्रभावसे मनको उद्विग्न कर देनेवाली चिन्ताकी ग्रन्थियाँ सुलझ गयीं, निराशा और निरुत्साह दूर भाग गये एवं मनपर नवीन उत्साह और नवीन आशाओंका राज्य स्थापित होगया। सदियोंसे गुलामीकी बेड़ियाँ पहननेवाले भारतवर्षके उद्धारका भी कोई उपाय है, महात्मा गान्धीके अन्तिम उपदेशसे युवकको उसका पूरा पूरा विश्वास होगया। साथही, भ्रान्तियाँ भाग गयीं, प्रश्नात्मिका प्रवृत्ति शान्ति और सन्तोषमें पलट गयी। 'किं कर्म किमकर्मेति' की निरन्तर उद्विग्न रखनेवाली समस्याको उद्देश्य-प्राप्ति या लक्ष्य सिद्धिके लिये सहज मार्ग मालूम होगया। अतएव युवकका चित्त भक्ति-रससे भर गया। उसने महात्मा गान्धीको साष्टांग प्रणामकर कहा,—"भगवन्! आपने मेरे ऊपर अनन्त उपकार किया है। निराशाके विकट तरंगमय समुद्रमें पड़े हुए मुझ अनाथके हृदयमें अपने अमृत जैसे मधुर उपदेशोंसे

घटना-चक्र
सचित्र जासूसी उपन्यास।

इस उपन्यासमें अङ्गरेज जातिकी पारस्परिक शत्रुताका बड़ा ही सुन्दर चित्र खींचा गया है। "लार्ड पेमब्रोक" नामी एक सम्भ्रान्त अङ्गरेज किस प्रकार शत्रुओंसे सताये जाकर अपनी अद्वितीय सुन्दरी भार्या "क्लियोपेट्रा" सहित भारतवर्षमें भाग आये, किस प्रकार उनके शत्रु-दलने भारतमें भी उनका पीछा न छोड़ा, किस प्रकार भारतके सरकारी जासूस "कृष्णजी रघुपन्त" ने शत्रुओंके हाथसे बारम्बार उनकी रक्षा की, किस प्रकार शत्रुओंके जासूस लार्ड पेमब्रोककी दाई नौकरी तकमें घुस गये, किस प्रकार दुष्टोंके षड़यन्त्रसे लार्ड पेमब्रोकको भयानक खूनी मामलेमें गिरफ्तार हो हवालात जाना पड़ा, किस प्रकार रास्तेमें शत्रुओंके जहाजने उनपर आक्रमण किया, किस प्रकार उनकी स्त्री "क्लियोपेट्रा" समुद्रमें फेंक दी गयी, किस प्रकार जासूस रघुपन्तने समुद्रमें कूदकर उसकी स्त्रीका उद्धार किया, किस प्रकार बड़े बड़े जासूसोंकी मददसे "लार्ड पेमब्रोक" को अदालतसे रिहाई मिली, आदि सैकड़ों विस्मयजनक घटनाओंका वर्णन है। दाम २॥)



जासूसके घर खून
सचित्र जासूसी उपन्यास।

इस उपन्यासमें विलायतके सुप्रसिद्ध जासूस मिस्टर रावर्ट बुककी ऐसी ऐसी जासूसियां दी गयी हैं कि मारे ताज्जुबके दांतों उंगली काटनी पड़ती है। सुन्दर सुन्दर २ चित्र भी हैं। दाम सिर्फ १॥) है।- रेशमी जिल्द २) रु०

शीशमहल

सचित्र ऐतिहासिक उपन्यास।

इस उपन्यासमें भारत सम्राट "अकबर" के समयकी कितनी ही अनो-



खी घटनाओंका सचित्र बयान किया गया है। सम्राट अकबरकी आज्ञासे सेनापति "इस्कन्दर" का गुप्त मार्गसे "ईमामाद खाँ" पर चढ़ाई करना, भयानक अंधेरी रातके समय चुपचाप दुर्गपर अधिकार जमा कर दुर्गाधिपति 'मीनाजी' को कैद करनेकी चेष्टा करना मीनाजीकी और पत्नी "गुलबदन" के अपूर्व रूप लावण्यपर मुग्ध हो कामवश विह्वल होना [illegible] गुलबदनका इस्कन्दरको धोखा देकर [illegible] दुर्गसे निकल भागना इस्कन्दरको [illegible] करना मीनाजीका पहाड़से गिर कर प्राण त्याग करना, गुलबदनको [illegible] इस्कन्दरको [illegible] निकलना, गुलबदनको [illegible] इस्कन्दरका कारागारसे निकल भागना [illegible] "बाजबहादुर" [illegible] बाजबहादुरका इस्कन्दरका [illegible] बाज बहादुरकी [illegible] तथा "कमिता" [illegible] इस्कन्दरका [illegible] दोनोंका विवाह [illegible] कितनी ही अपूर्व घटनायें भरी गयी हैं। मूल्य २॥, रेशमी जिल्द ३॥ रु

[illegible]सूसी कहानियां—

यह उपन्यास [illegible] उपन्यासोंका बड़ा ही अपूर्व संग्रह है। इसमें ५ उपन्यास दिये गये हैं—(१) माद [illegible] (२) मनौका बदला, (३) [illegible] (४) [illegible]का घोड़ा (५) चोर [illegible]। दाम सिर्फ [illegible]

❀ जासूसी कुत्ता

सचित्र जासूसी उपन्यास

पाठक! हम दावेके साथ कहते हैं, कि आजतक आपने ऐसा उपन्यास न पढ़ा होगा। इसमें ब्राउो नामक एक स्वामि-भक्त कुत्तेने कैसी कैसी करामातें दिखाई हैं और अपने गरीब स्वामीको "लार्ड" जैसे बड़े ओहदेपर पहुंचा दिया है, कि पढ़कर तबियत फड़क उठती है। साथ ही इस उपन्यासमें यह शिक्षा भी खूब मिल सकती है, कि मनुष्य निकम्मेपनको छोड़ परिश्रमके बलपर कहांतक उन्नति कर सकता है। हमारा एकान्त अनुरोध है, कि यदि आपको उपन्यासोंमें कुछ भी शौक न हो, तो भी आप इसे अवश्य पढ़ें, आपको पछताना न पड़ेगा, क्योंकि इसमें भाग्य-परिवर्तनका ऐसा सुन्दर चित्र अङ्कित किया गया है, कि पढ़कर निकम्मे मनुष्य भी कुछ दिनोंमें अपनी उन्नति कर सकते हैं। इसमें फोटोके सुन्दर सुन्दर ३ चित्र भी दिये गये हैं। मूल्य १।), रेशमी जिल्द १॥)



महेन्द्रकुमार

ऐय्यारी और तिलिस्मका अनूठा उपन्यास।

ऐय्यारी और तिलिस्मी खेलोंसे भरा हुआ, आश्चर्य व्यापारों और रोमहर्षण घटनाओंसे छपा हुआ यह अनूठा उपन्यास पढ़ने ही योग्य है। इस उपन्यासमें ऐसी ऐसी ऐय्यारियां खेली गयी हैं, कि पढ़कर पाठक फड़क उठेंगे। इस उपन्यासके पढ़ते समय पाठकोंका खाना, पीना, सोना, बैठना तक भूल जायगा। इतनेपर भी १००० पेजकी बड़े पोथेका दाम, सिर्फ ५) है।

पता—आर, एल, बर्मन एण्ड का०, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।

दुर्गादास

वीर-रस-पूर्ण सचित्र ऐतिहासिक नाटक ।

बङ्ग साहित्यमें जिस नाटककी धूम मच गयी थी, बङ्ग-भाषामें जिस नाटककी अनेकों सहस्त्र प्रतियाँ हाथो हाथ बिक गयी थें, कलकत्तेके बङ्गला थियेटरोंमें जिस नाटकके खेलते समय दर्शकोंकी जगह मिलना कठिन हो जाता था, वही गुदगुदाता हुआ वीर रस प्रधान ऐतिहासिक नाटक हिन्दीमें छपकर तय्यार है। वास्तवमें यह नाटक नाटकोंका 'मुकुट



मणि' है। इसमें "औरङ्गजेब" महाराणा राजसिंह, भीमसिंह, राणा उदयसिंह, शिवाजीके पुत्र महाराष्ट्राधिपति "शम्भाजी" और शाहजादे अकबर, भावल तथा कामबख्श प्रभृतिके इतिहास-प्रसिद्ध भीषण युद्धोंका वर्णन बड़ी ही ओजस्विनी भाषामें किया गया है। मुगल रमणियों और राजपूत ललनाओंके चरित्रका खाका बड़ी ही बारीकीसे खींचा गया है। इसे पढ़ और खेलकर पाठक इतने खुश होंगे, कि फिर नित्य ऐसे ही नाटक खेलने और पढ़नेके लिये खोजते फिरेंगे। पहली बारकी छपी कुछ कापियां बिक जानेपर हमने इसे दूसरी बार बड़ी सज धजसे छापा है और हाफटोन फोटोके छपे कितने ही सुन्दर सुन्दर रङ्गीन चित्र भी दिये हैं जिन्हें देखकर आप फड़क उठेंगे। दाम सिर्फ १॥), रेशमी जिल्द व चौका २) रुपया।

खूनी औरत

इसमें एक डाक्टरके मेसमेरिजम या ... ाशे किया गया है कि पढ़कर रोंगटे खड़े हो जाते

ता—आर, एल, वर्म्मन एण्डको०, ३७१

अमीरअली ठग सचित्र जासूसी उपन्यास

पाठक महोदयो! आपने शायद पुराने जमानेके भयानक ठगोंका हाल सुना होगा। 'इष्ट इण्डिया कम्पनी' के राजत्वकालमें इन ठगोंका बड़ा ही ज़ोर शोर था। ठगोंके ज़ोर-जुल्मसे उस समय सरकार और प्रजा दोनों ही तङ्ग आ गयी थीं। ठगोंके बड़े बड़े दल राजसी ठाठ बाट से दौरा करते फिरते थे और उनके गोइन्दे मुसाफिरोंको बरगला (बहका) कर अपने गरोहमें ले आते थे। फिर ठग लोग विचित्र ढङ्गसे रुमाल के झटकेसे बातकी बातमें उन्हें फांसी देकर सारा धन लूट लेते थे।



यह उपन्यास बड़ा ही रोचक और शिक्षाप्रद है और हाफटोन फोटोकी बड़ी बड़ी कई तस्वीरें लगाकर खूबही सजा दिया गया है। दाम सिर्फ ॥=)

कैदीकी करामात

यह एक बड़ाही रहस्यपूर्ण सचित्र डिटेक्टिव उपन्यास है लण्डनके मशहूर जासूस मि० राबर्ट ब्लेकने फ्रान्सके प्रसिद्ध विद्रोही और डाकू "हेनरी गेरक" को कितनी ही बार बड़े बहादुरीके साथ गिरफ्तार किया था पर फिर भी गेरक बराबर उनकी आखोंमें धूल झोंक भागता रहा। इस डाकूने सारे यूरोपमें हलचल मचा रखी थी। यहांतक कि स्वयम् मिष्टर ब्लेकको भी कई बार इससे लाञ्छित होना पड़ा। अन्त में ब्लेकने किस तरह इसे पकड़ कर सजा दिलवाई, यह पढ़कर आप दङ्ग होजायेंगे—दाम १॥

नकली रानी— इसमें एक डाकू स्त्रीकी वीरता, और दिलेरी आदिका बयान, बड़े ... किया गया है। सुन्दर सुन्दर कई चित्र भी हैं।

पता-आर, एल, बर्म्मन एण्ड को०, ३७१ अपर चि...

आदर्श चाची

शिक्षाप्रद सचित्र गार्हस्थ उपन्यास !

हिन्दी-संसारमें यह पहला ही उपन्यास छपा है, जिससे समाज वा देशका वास्तविक उपकार हो सकता है। स्त्री, पुरुष, बूढ़े, बच्चे, सभी इस उपन्याससे मनोरञ्जनके साथ ही साथ आदर्श शिक्षा भी प्राप्त कर सकेंगे। प्रायः देखा गया है, कि स्त्रियोंकी अनबनसे बड़े-बड़े सुखी, समृद्धिशाली परिवार तहस-नहस हो गये हैं, बाप बेटेसे छूट गया है, भाई भाईमें विरोधता हो गयी है चाचा भतीजेमें बैर हो गया है और बना बनाया भाग्यका घर खाकमें मिल गया है। यह उपन्यास इसी प्रकारकी घटनाओंको सामने रखकर लिखा गया है। एकबार इस उपन्यासको पढ़ लेनेसे आपसकी बैर भाव और इराग्रह-द्वेषका नाश हो जाता है। मूल्य केवल १) रेशमी जिल्द १॥)



राजसिंह

इसमें ६ रंगीन चित्र हैं। सचित्र ऐतिहासिक उपन्यास।

इसमें वीर-शिरोमणि महाराणा राजसिंह और सम्राट औरङ्गजेबके उस भीषण युद्धका वर्णन है, जिसमें सहस्राधिक ... इस महायुद्धमें राजसिंहने दृष्टान्त औरङ्गजेबकी बड़ी बहादुरी ... नगर' की राज ... की धर्म रक्षा ... माओं और ... बहू-बेटियोंके ... रंगीन जिल्द २)

शोणित-तर्पण

घटनापूर्ण सचित्र जासूसी उपन्यास।

सन १८५७ ई०के जिस भयानक "गदर" (बलवे) ने एकही दिन, एक ही समय और एक ही लगनमें सारे "भारतवर्ष" में प्रचण्ड विद्रोहाग्नि फैला दी थी, जिस गदरने अपनी भीषणतासे बड़े बड़े प्रतापी वीरोंके दिल दहला दिये थे, जिसने दिल्ली, कानपुर बिठूर, मेरठ, काशी और बक्सर आदिको सुविशाल 'समर क्षेत्र' में परिणत कर दिया था, जिस ने भारत-सरकारकी अधिकांश देशी फौजोंको विद्रोही बना दिया था, जिस भारतीय प्रचण्ड विद्रोहानल की विकट हुङ्कारने सुदूरव्यापी "इङ्गलैण्ड" में भी भयानक हलचल मचा दी थी, उसी प्रसिद्ध "गदर" या "सिपाही विद्रोह" का इसमें पूरा हाल दिया गया है। साथ ही



गदर सम्बन्धी सुन्दर सुन्दर ७ चित्र भी हैं। दाम २), सुनहली जिल्द २॥) रु०

पीतलकी मूर्त्ति

सचित्र ऐतिहासिक उपन्यास।

यह उपन्यास "लण्डन रहस्य" के प्रख्यात नामा लेखक मिस्टर जार्ज विलियम रैनाल्डसका लिखा है। इसमें "पीतलकी मूर्त्ति" नामक भयानक तिलिस्मका अद्भुत रहस्य, रोमनकैथलिक पादड़ियोंके भयङ्कर अत्याचार, प्रेग, बोहेमियां, टर्की, हङ्गर-मण्डल और जर्म्मनीकी भीषण लड़ाइयां, "मायवी" और "शैतानी" का विलक्षण भेद, "शैतान" और आष्ट्रियाके सम्राटका आश्चर्य जनक युद्ध, आदि बातें बड़ी खूबीसे लिखी गई हैं, साथ ही बड़े ही भावपूर्ण ५० चित्र भी दिये गये हैं। दाम ९ भागोंका सिर्फ ७॥) सजिल्द ८॥)

भीषण डकैती

यह उपन्यास बङ्ग साहित्यके गौरवस्तम्भ, जासूसी उपन्यासोंके एक मात्र दायधार श्रीयुत 'बाबू पाचकौड़ी दे'की विचित्र लेखनीका सजीव प्रतिबिम्ब है। इसमें "मिष्टर रोटलेण्ड" नामक एक अमेरिकन जासूसको अपर्व कारवाइयों का ऐसा सुन्दर चित्र खींचा गया है, कि पुस्तक एकबार उठाकर फिर छोड़नेकी इच्छा ही नहीं होती। इस उपन्यासके प्रत्येक परिच्छेद, प्रत्येक पृष्ठ, प्रत्येक पैराग्राफ, प्रत्येक पंक्ति और प्रत्येक शब्दमें दिलचस्पी और मनोरञ्जकता कूट कूटकर भरी गयी है। साथ ही सुन्दर सुन्दर चित्र भी दिये गये हैं। इसमें इस उपन्यासकी प्रधान नायिका 'मिसेस तोरामनी' का एक ऐसा अपूर्व तिनरङ्गा चित्र दिया गया है, कि देखते ही मन हाथसे निकल जाता है। दाम सिर्फ १॥) सजिल्द २) रु



डाक्टर साहब

सचित्र जासूसी उपन्यास

इसमें लगडनके विख्यातनामा अस्त्र-चिकित्सक, अद्भुत क्षमताशाली 'डाक्टर क्यू' की उस भीषण रसायन-विद्याका चमत्कार है, जिसके द्वारा वह बातकी बातमें जिन्देको 'मुर्दा' और मुर्देको 'जिन्दा' बनाकर अपना इच्छित मतलब गांठ लेता था। इस डाक्टरके गुप्त अत्याचारोंसे सारा इङ्गलैण्ड हहरा उठा था और वहां लोग "जादू विद्या" "भूत-विद्या" आदि समझने लगे थे। अन्तमें वहांके विलक्षण शक्तिशाली सुप्रसिद्ध जासूस 'मिष्टर बुक' ने किस प्रकार उसका रहस्य-भेदकर उस 'डाक्टर क्यू' को गिरफ्तार किया है, यह पढ़नेही योग्य है। सुन्दर सुन्दर दो चित्र भी दिये गये हैं। दाम सिर्फ १॥)

'बर्म्मन प्रस' कलकत्ताकी सर्व्वोत्तम पुस्तकें।

जासूसी चक्कर

सचित्र जासूसी उपन

विषयकी इस उपन्यासमें बम्बईकी पारसी-समाजका बड़ा ही चि
रहस्य खोला है। कुछ दिन हुए बम
'हरमसजी' नामक एक धन
पारसी सज्जनके खजानेमें वि
रुपये एक लाखकी चोरी हो गयी,
की लूटी सड़कपर आड़ागाड़ीमें
पारसी युवक जानसे मार डाला ग
इन दोनों घटनाओंको लेकर बम
बड़ी हलचल मच गयी। इन
चोरीके बहानामें "रुस्तमजी" ना
एक पारसी गिरफ्तार हुआ।
दोनों घटनाओंको जांचके लिये सर
रकी ओरसे बड़े बड़े ४ जासूस
गये। जाच धूमधामसे होने ल
फिर कैसे चार इन जासूसोंने एक
'रतनबाई'की सहायतासे पतालगा
कैसे निरपराध रुस्तमजीने महाल



घटनासे पाया, कैसे मकानों विवाहके समय, भीषण व्यक्ति बर्जोरजी गिरफ्त
किया गया, आदि घटनायें इस खूबीसे लिखी गयी हैं, कि बिना समाप्त कि
पुस्तक छोड़नेकी इच्छा ही नहीं होती। खून, चोरी आग, जुआ चोरी, ब
बातें दिखलाई गयी हैं। हाफटोनके ५ चित्र भी हैं। मूल्य १॥) सजिल्द २)

सचित्र गो-पालन-शिक्षा

इसमें गो बछड़ोंकी पहचान, पालन, दवायें और दूध बढ़ाने तथा दूधसे
बनानेवाले पदार्थोंको बनानेके ऐसे सरल तरीके लिखे गये हैं, कि मनुष्य कुछ
ही दिनोंमें मालामाल हो जा सकता है। गाय आदि पालनेवालोंको
अवश्य खरीदना चाहिये, ७ चित्र भी दिये हैं। दाम केवल ।=) आना।

पता—आर, एल, बर्म्मन एण्ड को०, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।



नराधम

सचित्र जासूसी उपन्यास।

इसमें एक मित्रद्रोही डाक्टरकी स्वार्थ परताका बड़ा ही सुन्दर खाका खींचा गया है। डाक्टरका, मित्रकी स्त्रीसे गुप्त प्रेम कर अन्तमें उसका खून करना, अपनी दूसरी प्रेमिकासे खूनकी बातचीत करते समय डाक्टरसे मित्रका छिपकर सुनना और फिर उसे धमकाना, डाक्टर और उसकी प्रेमिकाका मित्रको धोखा देकर फांसीपर लटकाना, मित्रकी लाश का एकाएक गायब हो जाना, दो चोरोंका भेद खोल देनेका भय दिखलाकर डाक्टरको धमकाना, डाक्टरको एकको भट्टीमें झोंककर मार डालना। मुरदा लाशका एकाएक जिन्दा हो जाना, आदि बड़ी आश्चर्यजनक बातें लिखी गयी हैं, दाम सिर्फ १=) जिल्दसहितका १॥=)





शशिबाला

शिक्षाप्रद जासूसी उपन्यास।

इसमें एक सच्चरित्रा स्त्रीने किस चतुरता, बुद्धिमत्ता और दूर-दर्शितासे अपने कुपथगामी स्वामी और कितनेही मनुष्योंको सुपथगामी बनाया है,वह पढ़ते पढ़ते जी फड़क उठता है। कुमारस्वामीका तिलिस्मी मठ, जोगिनीकी अद्भुत चातुरी, वीरसिंहकी विलक्षण वीरता, शशिबालाकी अद्वितीय सुन्दरता आदिका हाल पढ़कर आप अवाक् रह जायंगे। यह शिक्षाप्रद उपन्यास स्त्री, पुरुष, बूढ़े बच्चे सभीके पढ़ने योग्य है। दाम सिर्फ ॥) आना।

जासूसी पिटारा—इसमें बड़े ही रहस्य जनक ५ जासूसी उपन्यास हैं—(१) गुलजारमहल, (२) फूल बेगम, (३) विचित्र जौहरी, (४) असली हजारकी चोरी, (५) स्त्री है या राक्षसी? दाम ॥)

—आर, एल, बर्म्मन एण्ड को०, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।

सच्चामित्र ❀ ज़िन्देकी लाश

यह उपन्यास बड़ाही रहस्यमय, अनूठा शिक्षाप्रद और हृदयग्राही है। इस
एक सच्चेमित्रका अपूर्व स्वार्थ-त्याग, कुटिलोंकी कुटिलता, पातिव्रतकी महि
और मुर्देका जी उठना आदि बड़ी अद्भुत घटनायें लिखी गयी हैं। दाम ॥≈)

जीवनमुक्त-रहस्य

शिक्षाप्रद सचित्र सामाजिक नाटक।

ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, राजनीति, धर्म्मनीति और समाज-नीतिसे भरा हुआ
ईसाइयोंकी पोल खोलनेवाला, कुटिलों, बेईमानों और जालसाजोंका भण्डा
फोड़नेवाला, पातिव्रत धर्म्मकी रक्षा करनेवाला और स्वार्थ त्यागका उज्ज्वल उपदे
देनेवाला यह नाटक इतना मनोहर, हृदयग्राही, शिक्षाप्रद और अनूठा है, कि पु
बार इसे पढ़ लेनेसे मनुष्य सैकड़ों तरहकी सांसारिक बुराइयोंसे सावधान हो जा
है, अवश्य पढ़िये। दाम बिना जिल्द २) रु० रङ्गीन जिल्द बंधाका २।) रुपया।

❀ वीर-चरितावली ❀

इसमें निम्नलिखित वीर वीराङ्गनाओंकी १९ वीर कहानियां दी गयी हैं
(१) रानी दुर्गावती (२) रानी लक्ष्मीबाई (३) अयाहद बाई, (४) कमदे
वीर धात्री पन्ना, (६) वीर-बालक और वीर-नारी (७) राजकुमार च
, (९) बाटलमल्ल, (१०) रायमल्ल (११) सिक्ख वीर-अकालीतसि
) हम्मीर, (१३) महाराणा प्रतापसिंह, (१४) छत्रपति शिवाजी, (१५) रा
(१६) राजर्षि उम्र दधिच प्रभति। सुन्दर सुन्दर ४ चित्र भी हैं।

टिकेन्द्रजितसिंह

पाठकों! उन्नीसवीं सदीके अन्तमें "टिकेन्द्रजितसिंह" जैसा वीर-केस
भारतवर्षमें दूसरा नहीं जन्मा। इस वीरने अपने बाहुबलसे सैकड़ों सि
मारे और अनेक युद्धोंमें जय पाई। अन्तमें यह वीर अङ्गरेजोंसे युद्धमें परा
हो, बड़ी वीरतासे हंसते हंसते फांसी पर चढ़ गया। दाम सिर्फ १) रु०

१—आर, एल, बर्म्मन एण्ड को०, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता

'बर्मन प्रेस' कलकत्ताकी सर्व्वोत्तम पुस्तकें।

साहसी-सुन्दरी वा समुद्री डाकू

रहस्यमय सचित्र जासूसी उपन्यास।

जासूस सम्राट मिस्टर ब्लेकके जासूसी घटनाओंसे भरे उपन्यास सारे संसारमें प्रसिद्ध हैं और लोग उन उपन्यासोंको ऐन्द्रजालिक उपन्यास बताते हैं। वास्तवमें यह बात ठीक है, क्योंकि जो व्यक्ति एकबार उनका कोई उपन्यास पढ़नेके लिये उठा लेता है, वह पढ़ता-पढ़ता तन्मयहो जाता है और बिना पूरा पढ़े छोड़ही नहीं सकता। यह उपन्यास भी मि० ब्लेककी आश्चर्यजनक जासूसियोंसे भरा है। इसमें साहसी सुन्दरी अमेलियाके एसे ऐसे भयानक समुद्री डाकों और अद्भुत कार्य्य-कलापोंका हाल है, कि जिनके कारण केवल वृटिश-सरकार ही नहीं, बल्कि फ्रान्स, जर्म्मनी और अमेरिकाकी सरकारें भी तंग आगयी थीं। इसी साहसी सुन्दरीके भीषण डाकू जहाजको समुद्रों समुद्रों घूम और बारम्बार नयी नयी विपत्तियोंमें पड़कर जासूस सम्राट मि० ब्लेकने किस सफ़ाईसे गिरफ्तार किया है, कि पढ़कर दांतों उँगली काटनी पड़ती है। चोरी, बदमाशी, डकैती, जालसाजी, खून-खराबी आदि अनेक रोएँ खड़ेकर देनेवाली घटनाएं इसमें आदिसे अन्ततक भरी हैं। साथही रंग बिरंग सुन्दर सुन्दर ६ चित्र भी दिये गये हैं। दाम १॥।), सजिल्द २।)

❀ लाल-चिट्ठी ❀

सचित्र ऐतिहासिक जासूसी उपन्यास।

आश्चर्य्यजनक व्यापारोंसे भरा और लोमहर्षण भीषण काण्डोंमें रंगा हुआ यह उपन्यास इतना दिलचस्प, हृदयग्राही और अनूठा है, कि पढ़ते पढ़ते कभी आश्चर्य्यान्वित, कभी रोमाञ्चित और कभी पुलकित हो जाना पड़ता है। इसमें सम्राट अकबरके शासन-कालका एक ऐसा भीषण षड्यन्त्र लिखा गया है, जिसके कारण स्वयं सम्राट अकबर, राजा बीरबल और राज्यके प्राय सभी बड़े-बड़े कर्म्मचारी घबरा उठे थे। "लाल चिट्ठी"का ऐसा हैरत अंगेज रहस्य खोला गया है, कि आप भी पढ़कर चकित, स्तम्भित और विमोहित होजाइयेगा। सुन्दर-सुन्दर ४ रङ्गीन चित्र भी दिये गये हैं। दाम बिना जिल्द १॥।), रेशमी जिल्द बँधी २।) है।

पता—आर, एल, बर्म्मन, एण्ड कों०, ३७१ अपर चीतपुर-रोड, कलकत्ता।

सुन्दरी-डाकू

यह एक बड़ाही मनोरंजक जासूसी उपन्यास है। इसमें लण्डनके जासूस सम्राट मि० ब्लेक और चतुर-शिरोमणि सुन्दरी अमेलियाके अद्भुत कार्य-कलापों का बड़ाही सुन्दर, रहस्यमय वर्णन है। जिन्होंने हमारे यहाके "साहसी सुन्दरी" "गुलाबमें काँटा" "कैदीकी करामात," और "जर्म्मन-षड़यन्त्र" आदि उपन्यासोंको पढ़ा है, उन्हें तो यह अवश्यही पढ़ना चाहिये। दाम १॥) रु० रेशमी जिल्द २।)

टापूकी रानी

यह उपन्यास भी मिष्टर ब्लेक और सुन्दरी अमेलियासे सम्बन्ध रखता है। इसमें सुन्दरी अमेलियाके प्रशान्त महासागरमें एक नवीन टापूका आविष्कार करन और संसार-भरके खूनी, चोर, डाकू और भगोड़े असामियोंको उसमें बसाकर स्वयं उसकी रानी बननेका बड़ाही दिलचस्प हाल लिखा गया है। मिष्टर ब्लेकने कैसी-कैसी तकलीफें उठा और समुद्रोंका पानी छान, इस टापूका पता लगाकर, खूनी-हत्यारोंको गिरफ्तार किया है, उसे पढ़कर आप दंग रह जायंगे। सुन्दर सुन्दर घटनापूर्ण ५ चित्र भी दिये गये हैं। दाम १॥) रु० रेशमी जि० २।) रु०।

रणभूमिका-रिपोर्टर

इसमें अंग्रेज-जर्म्मन-युद्धके सैकड़ों रहस्यमय गुप्त घटनाओं और जासूस सम्राट् मि० ब्लेककी आश्चर्य्यजनक जासूसियोंका बड़ाही मजेदार वर्णन है। कई चित्र भी दिये गये हैं। मूल्य बिना जिल्द १॥) रेशमी जि० २।) रु०

जासूसी-गुलदस्ता

इसमें बड़ेही अनूठे सुन्दर-सुन्दर सात जासूसी उपन्यास दिये गये हैं, जिन्हें पढ़कर आप मारे आश्चर्य्यके भकचका जाइयेगा। दाम सिर्फ १।) रुपया।

पुतली-महल चौथा भाग

जिस अनूठे उपन्यासके चौथे भागके लिये हमारे प्रेमी पाठक वर्षोंसे लालायित थे और तकाज़े पर तकाज़ा भेज रहे थे, उसी "पुतली-महल" उपन्यासका चौथा भाग छपकर तैयार है। दाम चारों भागका ३) सिर्फ चौथे भागका ॥) आ०

रमणी-रत्न मालाका ७ वाँ रत्न

सती बेहुला

१३ रङ्ग बिरङ्गे चित्रों सहित छपकर तैयार है।

इसमें भारतवर्षके भूतकालकी दो-सतियोंके पवित्र चरित्र बड़ीही सुन्दर साथ लिखे गये हैं। इनमें पहली सती "मनसा देवी" हैं, जो देवा महादेवकी मानसिक पुत्री, महर्षि-जरत्कारुकी धर्म्म-पत्नी और नाग-लो शासन-कर्त्री हैं। इनकी कठिन तपस्या, प्रगाढ़ पति भक्ति और अद्भुत-आ त्याग देखकर अवाक् रह जाना पड़ता है। दूसरी सती—इस उपाख्या प्रधान नायिका "सती बेहुला" हैं, जिनका जीवन-वृत्तान्त बड़ाही आ आश्चर्य्य-जनक, कौतूहल-वर्धक, करुणा पूर्ण और चित्ताकर्षक है।

सती शिरोमणि "सावित्री"की भाँति बेहुलाने भी अपने मरे हुए प जिला लिया था। परन्तु "सावित्री" और "बेहुला" की कार्य्य प्रणाल बहुत अन्तर है। "सावित्री देवी" ने अपने कठोर पातिव्रत धर्म्मके प्रत एकही रातमें स्वयं यमराजको परास्तकर अपने पतिका प्राण-दान पा था और "बेहुला" अपने मृत पतिका शरीर कदली-स्तम्भके बेड़ेपर नदीमें बहती-बहती छ महीने बाद स-शरीर स्वर्गमें पहुची थी और उसने तैतीस कोटि देवताओंको अपने अद्भुत नाच गानसे प्रसन्नकर पति प्राण भिक्षा पायी थी। नदीमें बहते-बहते उसके पतिकी लाश सड़ गयी उसमें कीड़े पड़ गये थे और अन्तमें मांस गल गलकर गिर गया था। प इतनेपर भी "बेहुला"ने उसे न छोड़ा। उसने पतिकी हड्डियाँ धो धोकर आँ चलमें बाँधलीं और अन्तमें देव-लोकसे पतिको जिलाकर ही लौटी! यही नहीं, ब वह अपने पहलेके मरे हुए छ जेठोंको भी जिला लायी और इस प्रकार उ अपनी छहों विधवा जिठानियोंको पुनः सधवा बना दिया! जिस स्त्रीने ऐ महान सतीके उज्ज्वल चरित्रसे कुछभी शिक्षा न ग्रहण की, उसका जीवनही व है। रंग बिरंगे १३ चित्र भी हैं, दाम २)], रंगीन जिल्द २।), रेशमी जिल्द २॥)



श्रीराम-चरित



"श्रीराम चरित्र" सम्पूर्ण वाल्मीकि रामायणका हिन्दी भाषान्तर है और लगभग [illegible] पृष्ठ में समाप्त हुआ है। इस [illegible] चित्र भी दिये गये हैं। दाम सजिल्द [illegible]
पता—[illegible] कलकत्ता।